तू गुलाब होकर महक,
तुझे जमाना जाने...

भगवत्पाद सद्गुरु
श्री श्री लीलाशाहजी महाराज

हे ओंकारस्वरूप सद्गुरु श्रीमूर्ति !
आपको नमस्कार है।
हे श्रीगुरुराज ! यह सारा चराचर
विश्व आपका ही स्वरूप है।
आप ही विश्व के आत्मा हैं।
विश्व का स्फुरण भी आप ही
हैं तथा साकार व निराकार
मूर्ति भी आप ही हैं।
धनभागी हैं वे जिनको
ऐसे सद्गुरु मिलते हैं।

परम पूज्य संत श्री
आसारामजी बापू

संत श्री आसारामजी आश्रम द्वारा प्रकाशित

ऋषि प्रसाद

हिन्दी

नौनिहालों में संस्कार-सिंचन के सेवाकार्य

वाड़ी, जि. गुलबर्गा (कर्नाटक) में सत्साहित्य 'बाल संस्कार' का वितरण तथा भावनगर (गुज.) के निर्धन छात्रों में पूज्य बापूजी की मनोरम छवि व सुवाक्ययुक्त नोटबुकों का वितरण।

ढोराला, जि. उस्मानाबाद (महा.) में यौगिक क्रियाएँ सीखते हुए नौनिहाल तथा फगवाड़ा, जि. कपूरथला (पंजाब) में प्रसन्नता एवं स्वास्थ्यवर्धक हास्य-प्रयोग का लाभ लेते बच्चे।
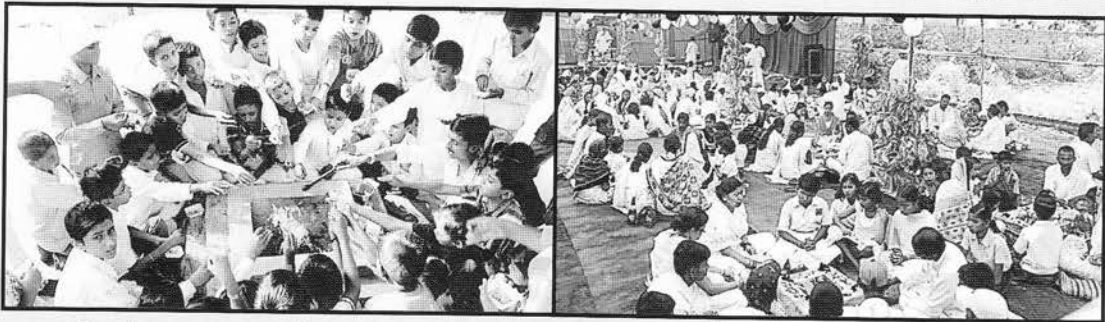
जलगाँव (महा.) तथा बालेश्वर (उड़ीसा) में सर्वहित की मंगल भावना से सम्पन्न हुए सामूहिक यज्ञ।

मेसन, जि. साबरकांठा (गुज.) तथा गोलवाँ, जि. काँगड़ा (हि.प्र.) के विद्यार्थियों में सुवाक्ययुक्त लेखन पुस्तिकाओं का वितरण।

ऋषि प्रसाद

मासिक पत्रिका

हिन्दी, गुजराती, मराठी, उड़िया, तेलगू, कन्नड़ व अंग्रेजी भाषाओं में प्रकाशित

वर्ष : १९ अंक : १९८
जून २००९ मूल्य : रु. ६-००
ज्येष्ठ-आषाढ़ वि.सं. २०६६

सदस्यता शुल्क (डाक खर्च सहित)

भारत में

(१) वार्षिक : रु. ६०/-
(२) द्विवार्षिक : रु. १००/-
(३) पंचवार्षिक : रु. २२५/-
(४) आजीवन : रु. ५००/-

अन्य देशों में

(१) वार्षिक : US $ 20
(२) द्विवार्षिक : US $ 40
(३) पंचवार्षिक : US $ 80

ऋषि प्रसाद (अंग्रेजी)	वार्षिक	द्विवार्षिक	पंचवार्षिक
भारत में	७०	१३५	३२५
अन्य देशों में	US$20	US$40	US$80

कृपया अपना सदस्यता शुल्क या अन्य किसी भी प्रकार की नकद राशि रजिस्टर्ड या साधारण डाक द्वारा न भेजा करें। इस माध्यम से कोई भी राशि गुम होने पर आश्रम की जिम्मेदारी नहीं रहेगी। अपनी राशि मनीऑर्डर या डिमांड ड्राफ्ट (अमदावाद में देय) द्वारा ही भेजने की कृपा करें।

संपर्क पता : 'ऋषि प्रसाद', श्री योग वेदांत सेवा समिति, संत श्री आसारामजी आश्रम, संत श्री आसारामजी बापू आश्रम मार्ग, साबरमती, अहमदाबाद-३८०००५ (गुजरात)।

फोन नं. : (०७९) २७५०५०१०-११, ३९८७७७८८, ६६११५५००.

e-mail : ashramindia@ashram.org
web-site : www.ashram.org

स्वामी : संत श्री आसारामजी आश्रम
प्रकाशक और मुद्रक : श्री कौशिकभाई पो. वाणी
प्रकाशन स्थल : श्री योग वेदांत सेवा समिति, संत श्री आसारामजी आश्रम, संत श्री आसारामजी बापू आश्रम मार्ग, साबरमती, अहमदाबाद - ३८०००५, गुजरात।
मुद्रण स्थल : विनय प्रिंटिंग प्रेस, "सुदर्शन", मिठाखली अंडरब्रीज के पास, नवरंगपुरा, अहमदाबाद- ३८०००९. (गुजरात)
सम्पादक : श्री कौशिकभाई पो. वाणी
सहसम्पादक : डॉ. प्रे. खो. मकवाणा, श्रीनिवास

Subject to Ahmedabad Jurisdiction

• अनुक्रमणिका

गुरुपूर्णिमा-संदेश

(गुरुपूर्णिमा : ७ जुलाई)

(पूज्य बापूजी के सत्संग-प्रवचन से)

गुरुपूर्णिमा जन्म-जन्मांतर से भटकते हुए जीव में आचार्य के, भगवान के, शास्त्रों के वचनों से और जीव के अपने अनुभव से ज्ञान, भक्ति और योग का प्रसाद भरकर उसकी योग्यता को ऐसा कर देती है कि वह जीव फिर माता के गर्भों की पीड़ा सहने का जो दुर्गम मार्ग है, उससे बचकर परम पद का अधिकारी हो जाता है । परम पद के अधिकारी बनानेवाले वेदव्यासजी महाराज जैसे जो ब्रह्मवेत्ता गुरु हैं, उन गुरुओं को याद करके अपने चित्त को पावन करने का दिन गुरुपूनम का दिन है ।

यह तपस्या का दिन है, व्रत का दिन है । यह दिन आचार्य के मार्गदर्शन के अनुसार अपने जीवन में कुछ नया व्रत लेने का दिन है । 'मेरे मन में ये-ये कमियाँ हैं, मेरे व्यवहार में ये-ये कमियाँ हैं, मेरे जीवन में ये-ये कमियाँ हैं'- इस प्रकार आत्म-विश्लेषण करके उन कमियों को निकालने के लिए हम कर सकें उस प्रकार का कोई व्रत या जप-अनुष्ठान आदि का कोई नियम लेकर आगे की यात्रा के लिए संकल्प करने का दिन है । वर्ष भर में हमने जो साधन-भजन किया और जो कुछ अनुभूतियाँ हुईं उनसे आगे बढ़ने का संकेत पाने का दिन है ।

व्यासपूर्णिमा के बाद आध्यात्मिक संस्कृति के विद्यालय खुलते हैं और नये पाठ शुरू होते हैं । जैसे गर्मियों में पृथ्वी सूख जाती है और व्यासपूर्णिमा के समय वृष्टि होती है तो पृथ्वी में नयी चेतना आती है, वृक्षों में नया जीवन आता है, ऐसे ही व्यासपूर्णिमा साधक के जीवन में नयी आध्यात्मिक चेतना, नया प्रकाश, नया आनंद और नया उल्लास लाती है तो साधक को नवीन जीवन की तरफ अग्रसर होने की प्रेरणा मिलती है । इस पर्व से प्रेरणा लेकर जीवात्मा परमात्मा तक पहुँचने का प्रयत्न कर सकता है । वेदव्यासजी महाराज ने विश्व का सर्वप्रथम आर्ष ग्रंथ 'ब्रह्मसूत्र' व्यासपूर्णिमा के दिन लिखना प्रारंभ किया था । 'महाभारत' व्यासपूर्णिमा के दिन ही पूर्ण हुआ था और देवताओं ने इस दिन को आशीर्वाद दिये थे कि 'आज के दिन जो साधक आचार्य-उपासना करेगा, आचार्य को संतुष्ट करके अपने आध्यात्मिक मार्ग का निर्णय कर लेगा उसको वर्ष भर के पर्व मनाने का फल मिलेगा ।' तब से मनुष्य यह व्यासपूर्णिमा बड़े उत्साह से, उल्लास से मनाता आ रहा है । भारतवासी तो ठीक लेकिन ऊपर के लोकों में यक्ष, गंधर्व, किन्नर और जो योगीपुरुष रहते हैं, वे लोग भी इस उत्सव को बड़े उत्साह से मनाते हैं ।

यह लम्बी-चौड़ी कहानियाँ सुनने का उत्सव नहीं है, यह तो गुरु के निकट बैठने का उत्सव है । यह कथा का उत्सव नहीं है, सारी कथाएँ जहाँ से प्रकट होकर लीन हो जाती हैं ऐसे प्रकृति से पार आनंदस्वरूप आत्मा में आने का उत्सव है । उत्सव... 'उत्' माने समीप और 'सव' माने यज्ञ । गुरुकृपा से समीप-में-समीप आनंदस्वरूप आत्मा में पहुँचने का जो यज्ञ है, उसीका नाम 'व्यासपूर्णिमा उत्सव' है ।

दूसरे उत्सव तो हम मनाते हैं लेकिन

स्वतंत्रता दी है । मनुष्य उन्नत भी हो सकता है और अवनत भी । उन्नति करे तो ठीक है लेकिन अवनति, पतन न हो इसलिए जीवन में कोई नियम बना ले ।

जो सत्‌शिष्य हैं वे आचार्य-उपासना में अपने तन, मन और जीवन को लगाकर आचार्य-तत्त्व में टिक जाते हैं । शिष्य में शिष्यत्व रहे तो शिष्य गुरु-तत्त्व का प्रसाद पाता है । गुरु में गुरुत्व हो तो गुरु शिष्यों को गुरु-तत्त्व का प्रसाद चखाते हैं । जो प्रसाद पाने के अधिकारी हैं वे साधक, शिष्य कहे जाते हैं और आध्यात्मिक प्रसाद बाँटने का जिनमें सामर्थ्य है वे गुरु कहे जाते हैं । ऐसे सद्‌गुरु और सत्‌शिष्यों की जो महफिल है वह व्यासपूर्णिमा का महोत्सव है ।

इस दिन साधक दूध, फल अथवा अल्पाहार पर रहकर ध्यान-भजन, सेवा-सुमिरन, मौन आदि का अवलम्बन लेकर अपनी छुपी हुई आंतरिक शक्तियों को जगाने का दृढ़ संकल्प करता है और ज्यों-ज्यों भीतर का प्रसाद पाता है त्यों-त्यों निर्दोष होता जाता है । यह निर्दोष होने का उत्सव है, भीतर के प्रसाद को पाने का उत्सव है और फिर आगे चलकर गुरु व शिष्य, भक्त व भगवान के बीच की दूरी मिटाने का उत्सव है, जन्म-मरण के चक्कर को तोड़ फेंकने का उत्सव है, प्रकृति का जहाँ प्रभाव नहीं उस परम तत्त्व में जगने का उत्सव है । ❍

हमारी आँख से दुःख के आँसू तो बहुत निकलते हैं पर भक्ति के आँसू निकलें तो वे काम बना देते हैं । आँखों से बहे हुए भक्तिभाव के आँसू आसमान की बरसात को फीका कर देते हैं । बरसात में जो पानी बरसता है उससे तो जमीन में फसल उगती है पर आँख से जो आँसू गिरेंगे वे हृदय में भक्ति की फसल को बढ़ायेंगे । – पूज्य बापूजी

गुरुकृपा से ही मंगल होता है

गुरु ही ब्रह्मा गुरु ही विष्णु, गुरु ही देव महेश हैं ।
रूप दिखे मानव-सा उनका, पर सचमुच वे ईश हैं ।।
कृपा मिले जिसको सद्‌गुरु की, पाना नहिं कुछ शेष है ।
पाकर कृपा-प्रसादी गुरु की, साधक बने गणेश है ।।
सेवा करता मात-पिता की, ज्यों वे उमा महेश हैं ।
हीन भाव मिट जाय स्वतः ही, चिंता रहे न लेश है ।।
रूप दिखे मानव-सा उनका, पर सचमुच वे ईश हैं ।
मंगलमय सब होने लगता, बदल जाय परिवेश है ।।
गमनागमन का क्रम है छूटे, व्यापे राग न द्वेष है ।
लगा जिसे गुरुभक्ति का चस्का, दूर न उससे ईश है ।।
होने लगते चमत्कार हैं, मिलती कृपा विशेष है ।
ताली बजा कराते कीर्तन, झूमे देश विदेश है ।।
है जीना उसका ही जीना, जिस पर गुरु आशीष है ।
रूप दिखे मानव-सा उनका, पर सचमुच वे ईश हैं ।।

– के.पी. सिंह
अतिरिक्त जिला एवं सत्र न्यायाधीश,
ग्वालियर (म.प्र.) ।

क्या जादू है इनके प्यार में

क्या अनोखी शान है गुरुदेव के दरबार में ।
खुले हाथों ही दया का दान है इस द्वार में ।।
तर रहे कितने पतित शठ, ज्ञानशून्य सुधर रहे ।
भर रहे शुचि, शांति से गुरुनाम के आधार में ।।
जिसने देखा है वही बस जानता इस बात को ।
कह नहीं सकते कि क्या जादू है इनके प्यार में ।।
कीर्ति, मति, गति, बुद्धि, वैभव जिसको जो कुछ है मिला ।
गुरुकृपा से ही सुलभ सब कुछ हुआ संसार में ।।
प्रेममय भगवान प्रियतम हृदय के अतिशय सरल ।
रीझ जाते हैं पथिक के तनिक से उद्‌गार में ।।

भाई मंझ की दृढ़ गुरुभक्ति

जीवन में चाहे कितनी भी विघ्न-बाधाएँ आयें और चाहे कितने भी प्रलोभन आयें किंतु उनसे प्रभावित न होकर जो शिष्य गुरुसेवा में जुटा रहता है, वह गुरु का कृपापात्र बन पाता है । जिसने पूर्ण गुरु की कृपा पचा ली उसे पूर्ण ज्ञान भी पच जाता है । अनेक विषम कसौटियों में भी जिसकी गुरुभक्ति विचलित नहीं होती उसका ही जीवन धन्य है । गुरु अर्जुनदेवजी के पास मंझ नामक एक जमींदार आया और बोला : ''कृपा करके मुझे शिष्य बना लीजिये ।''

गुरु अर्जुनदेवजी : ''तुम किसको मानते हो ?''

''सखी सरवर को । हमारे घर पर उनका मंदिर भी है ।''

''जाओ, उनको प्रणाम करके छुट्टी दे दो और मंदिर गिराकर आ जाओ ।''

''जी, जो आज्ञा ।''

मंदिर तोड़ देना कोई मजाक की बात नहीं है किंतु जमींदार की श्रद्धा थी, 'गुरु की आज्ञा से कर रहा हूँ, कोई बात नहीं'- यह भाव था, अतः उसने मंदिर तुड़वा दिया । मंदिर तुड़वाने से समाज के लोगों ने उसका बहिष्कार कर दिया और उसकी खूब निंदा करने लगे । इधर जमींदार पहुँच गया गुरु अर्जुनदेवजी के चरणों में । जमींदार की योग्यता को देखकर अर्जुनदेवजी ने उसे दीक्षा दे दी एवं साधना की विधि बतला दी ।

अब वह जमींदार इधर-उधर के रीति-रिवाजों में समय नष्ट न करते हुए गुरुमंत्र का जप करने लगा, ध्यान करने लगा । उसका पूरा रहन-सहन बदल गया । खेती-बाड़ी में ध्यान कम देने लगा । उसकी एक के बाद एक परीक्षाएँ होने लगीं । उसका घोड़ा मर गया, कुछ बैल मर गये । चोरों ने उसकी कुछ सम्पत्ति को चुरा लिया । समाज के लोगों द्वारा अब ज्यादा विरोध होने लगा और सभी लेनदारों ने उससे एक साथ पैसे माँगे । जमींदार मंझ ने अपनी जमीन गिरवी रखकर सबके पैसे चुका दिये और स्वयं किसीके खेत में मजदूरी करने लगा । उस समय ब्याज की दर ऐसी थी कि जो जमीन गिरवी रख देता था उसका ऊपर उठना असंभव-सा था । एक समय का जमींदार मंझ अब स्वयं एक मजदूर के रूप में काम करने लगा, फिर भी गुरु के श्रीचरणों में उसकी प्रीति कम न हुई । कुछ समय बाद मंझ को गाँव छोड़कर अपनी पत्नी और बच्चों के साथ अन्य गाँव जाना पड़ा । वह घास काटकर उसे बेचके गुजारा करने लगा । अर्जुनदेवजी ने जाँच करवायी तो पता चला कि पूरे समाज से वह अलग हो गया है, समाज ने उसका बहिष्कार कर दिया है फिर भी उसकी श्रद्धा नहीं टूटी है । यह जानकर वे बहुत प्रसन्न हुए । समाज से बहिष्कृत मंझ ने गुरु के हृदय में स्थान बना लिया ।

कुछ समय पश्चात् गुरु ने पुनः जाँच करवायी तो पता चला कि उसकी आय ऐसी है कि कमाये तो खाये और न कमाये तो भूखा रहना पड़े । गुरु ने एक शिष्य के हाथों मंझ को चिट्ठी भेजी । शिष्य को समझा दिया था कि ''बीस रुपये चढ़ावा लेने के बाद ही यह चिट्ठी उसे देना ।''

गुरु को कहाँ रुपये चाहिए ? किंतु शिष्य की श्रद्धा को परखने एवं उसकी योग्यता को बढ़ाने के लिए ही गुरु कसौटी करते हैं । सच ही तो है कि कंचन को भी कसौटी पर खरा उतरने के लिए कई बार अग्नि में तपना पड़ता है ।

गुरु की चिट्ठी पाने के लिए मंझ ने पत्नी से कहा : ''बीस रुपये चाहिए ।''

उस जमाने के बीस रुपये आज के पाँच-सात हजार से कम नहीं हो सकते । पत्नी बोली : ''नाथ ! मेरे सुहाग की दो चूड़ियाँ हैं और जेवर हैं । उन्हें बेच दीजिये और गुरुदेव को रुपये भेज दीजिये ।''

चूड़ियाँ और जेवर बेचकर बीस रुपये गुरु के पास भिजवा दिये । गुरुदेव ने देखा कि अब भी श्रद्धा नहीं डगमगायी ! कुछ समय के बाद दूसरी चिट्ठी भेजी, इस बार पचीस रुपये की माँग की गयी थी।

अब रुपये कहाँ से लायें ? घर में तो फूटी कौड़ी भी न थी । मंझ को याद आया कि 'गाँव के मुखिया ने अपने बेटे के साथ मेरी बेटी के विवाह का प्रस्ताव रखा था ।' उस समय जातिवाद का बोलबाला था और मंझ की तुलना में मुखिया की जाति छोटी थी । मंझ ने मुखिया के आगे प्रस्ताव रखा : ''मैं अपनी बेटी की सगाई आपके बेटे से कर सकता हूँ लेकिन मुझे आपकी तरफ से केवल पचीस रुपये चाहिए और कुछ भी नहीं ।''

मंझ ने एक छोटे खानदान के लड़के से अपनी बेटी की शादी करने में छोटी जाति का, छोटे विचार के लोगों का, किसीका भी ख्याल नहीं किया । धन्य है उसकी गुरुनिष्ठा !

गुरु ने देखा कि अब भी इसकी श्रद्धा नहीं टूटी । गुरु ने संदेश भेजा : ''इधर आकर आश्रम का रसोईघर सँभालो । रसोईघर में काम करो और लोगों को भोजन बनाकर खिलाओ ।''

मंझ गुरुआज्ञा शिरोधार्य करके रसोईघर में काम करने लगा । कुछ समय के बाद गुरु ने अपने एक शिष्य से पूछा : ''मंझ रसोईघर तो सँभालता है किंतु खाना कहाँ खाता है ?''

शिष्य ने कहा : ''गुरुदेव ! वह लंगर (भण्डारा) में सबको जिमाकर फिर वहीं पर भोजन पा लेता है ।''

गुरु बोले : ''मंझ सच्ची सेवा नहीं करता । वह कार्य के बदले में भोजन प्राप्त करता है । यह निष्काम सेवा नहीं है ।''

गुरु का संकेत मंझ ने शिरोधार्य किया । दूसरे दिन से मंझ दिन में रसोईघर में सेवा करके जंगल में जाता, लकड़ियाँ काट्के बाजार में बेचता और अपने परिवार के आहार की व्यवस्था करता । कुछ दिन तक ऐसा चलता रहा । एक दिन गुरुद्वारे में लकड़ी की कमी होने से भाई मंझ शाम के वक्त लकड़ियाँ लेने जंगल में गया । लकड़ियाँ काटने के बाद तूफान के कारण मंझ लकड़ियों का गट्ठर सिर पर रखकर पेड़ के नीचे आश्रय लेने गया लेकिन हवा के तीव्र वेग से वह एक कुएँ में गिर गया ।

एकाएक गुरु अर्जुनदेव ने अपने कुछ शिष्यों को बुलाया और एक लम्बा रस्सा तथा लकड़ी का तख्ता लेकर जंगल की ओर चल दिये । शिष्यों को आश्चर्य हुआ । एक कुएँ के पास जाकर गुरु ने कहा : ''इस कुएँ के तले में मंझ है । उसे आवाज दो और कहो कि रस्से से बाँधकर हम तख्त को अंदर उतारते हैं । तुम उसे पकड़ लेना, तब ऊपर खींच लेंगे ।''

बाद में कुछ बातें एक व्यक्ति के कान में कहीं और वह बात भी मंझ को बताने का संकेत किया । उस व्यक्ति ने मंझ से कहा : ''भाई ! तुम्हारी दयनीय दशा हो गयी । तुम ऐसे क्रूर गुरु को क्यों मानते हो ? तुम उनका त्याग क्यों नहीं करते ? तुम उनको भूल जाओ ।''

मंझ ने भीतर से तेज आवाज में उत्तर दिया : ''मेरे गुरु क्रूर हैं ऐसी बात कहने की तुम हिम्मत कैसे करते हो ! मेरे लिए उनके दिल में सिर्फ करुणा है । ऐसे बेशर्मी के शब्द कभी मत कहना !''

गुरु ने उस आदमी को स्वयं ही भेजा था मंझ की श्रद्धा तुड़वाने के लिए किंतु वाह रे मंझ ! मंझ ने कहा : **''गुरुनिंदा सुनने के बजाय कुएँ में भूखा मरूँगा लेकिन गुरु का होकर मरूँगा,**

निगुरों-निंदकों का होकर नहीं मरूँगा । निगुरों का, निंदकों का होकर अमर होना भी बुरा है, गुरु का होकर मरना भी भला है ।''

भाई मंझ ने पहले सिर पर उठाकर रखी हुईं सूखी लकड़ियाँ तख्त पर रख दीं और कहा : ''पहले इन लकड़ियों को बाहर निकालो । ये गुरु के रसोईघर के लिए हैं । ये गीली हो जायेंगी तो जलाने के काम नहीं आयेंगी ।''

लकड़ियाँ बाहर निकाली गयीं । बाद में मंझ को भी बाहर निकाला गया । बाहर निकलते ही मंझ ने गुरु को देखा । उनके चरणों में दण्डवत् प्रणाम किया । मंझ को उठाकर उसके कंधों को थपथपाते हुए गुरु अर्जुनदेव ने कहा : ''मुझे तुम पर गर्व है ! तुमने अडिग श्रद्धा, साहस और भक्ति के साथ सब कसौटियों का सामना किया और उनमें सफल हुए हो । तुमको तीनों लोक देकर मुझे प्रसन्नता होगी ।''

भाई मंझ की आँखों से अश्रुधाराएँ बहने लगीं । उसने कहा : ''मैं वरदान के रूप में आपसे आपको ही माँगता हूँ, और किसी वस्तु में मेरी प्रीति नहीं है ।''

गुरु ने मंझ को आलिंगन कर लिया और कहा :

''मंझ पिआरा गुरु को, गुरु मंझ पिआरा ।
मंझ गुरु का बोहिथा, जग लंघणहारा ।।

मंझ गुरु का प्यारा है और गुरु मंझ को प्यारे हैं । मंझ भवपार लगानेवाली गुरु की नौका है ।''

गुरु ने मंझ को सत्य का बोध करा दिया । कैसी विषम परिस्थितियाँ ! फिर भी मंझ हारा नहीं । कितने प्रयास किये गये श्रद्धा हिलाने के लिए किंतु मंझ की श्रद्धा डिगी नहीं । तभी तो उसके लिए गुरु के हृदय से भी निकल पड़ा : 'मंझ तो मेरा प्यारा है । मंझ भवपार लगानेवाली गुरु की नौका है ।'

धन्य है मंझ की गुरुभक्ति ! धन्य है उसकी निष्ठा और धन्य है उसका गुरुप्रेम ! ❍

गुरुभक्तियोग

- स्वामी श्री शिवानंदजी सरस्वती

किसी भी प्रकार के ज्ञान के उद्‌भव के लिए बाह्य साधन, कर्म या क्रिया आवश्यक है । अतः साधक में ज्ञान का आविर्भाव करने के लिए गुरु की आवश्यकता होती है । परस्पर प्रभावित करने की सार्वत्रिक प्रक्रिया के लिए एक-दूसरे के पूरक दो भाग के रूप में गुरु-शिष्य हैं । शिष्य में ज्ञान का उदय शिष्य की पात्रता और गुरु की चेतनाशक्ति पर अवलम्बित है । शिष्य की मानसिक स्थिति अगर गुरु की चेतना के आगमन के अनुरूप पर्याप्त मात्रा में तैयार नहीं होती तो ज्ञान का आदान-प्रदान नहीं हो सकता । इस ब्रह्माण्ड में कोई भी घटना घटित होने के लिए यह पूर्वशर्त है । जब तक सार्वत्रिक प्रक्रिया के एक-दूसरे के पूरक ऐसे दो भाग या दो अवस्थाएँ इकट्ठी नहीं होतीं, तब तक कहीं भी, कोई भी घटना घटित नहीं हो सकती ।

'आत्मनिरीक्षण के द्वारा ज्ञान का उदय स्वतः हो सकता है और इसलिए बाह्य गुरु की बिल्कुल आवश्यकता नहीं है'- यह मत सर्वस्वीकृत नहीं बन सकता । इतिहास बताता है कि ज्ञान की हरेक शाखा में शिक्षण की प्रक्रिया के लिए शिक्षक की सघन प्रवृत्ति अत्यंत आवश्यक है । यदि किसी भी व्यक्ति में किसी भी बाह्य सहायता के सिवाय, सहज रीति से ज्ञान का उदय संभव होता तो स्कूल, कॉलेज एवं यूनिवर्सिटियों की कोई आवश्यकता नहीं रहती । जो लोग 'शिक्षक की सहायता के बिना ही स्वतंत्र रीति से कोई व्यक्ति कुशल बन सकता है'- ऐसे गलत मार्ग पर ले

जानेवाले मत का प्रचार-प्रसार करते हैं, वे लोग भी तो स्वयं किसी शिक्षक के द्वारा ही शिक्षित होते हैं । हाँ, ज्ञान के उदय के लिए शिष्य या विद्यार्थी के प्रयास का महत्त्व कम नहीं है । शिक्षक के उपदेश जितना ही उसका भी महत्त्व है ।

इस ब्रह्माण्ड में कर्ता एवं कर्म सत्य के एक ही स्तर पर स्थित हैं क्योंकि इसके सिवाय उनके बीच पारस्परिक आदान-प्रदान संभव नहीं हो सकता । अलग स्तर पर स्थित चेतनाशक्ति के बीच प्रतिक्रिया नहीं हो सकती । हालाँकि शिष्य जिस स्तर पर होता है उस स्तर को माध्यम बनाकर गुरु अपनी उच्च चेतना को शिष्य पर केन्द्रित कर सकते हैं । इससे शिष्य के मन का योग्य रूपांतर हो सकता है । गुरु की चेतना के इस कार्य को 'शक्ति-संचार' कहा जाता है । इस प्रक्रिया में गुरु की शक्ति शिष्य में प्रविष्ट होती है । ऐसे उदाहरण भी मिल जाते हैं कि शिष्य के बदले में गुरु ने स्वयं ही साधना की हो और उच्च चेतना की प्रत्यक्ष सहायता के द्वारा शिष्य के मन की शुद्धि करके उसका ऊर्ध्वीकरण किया हो ।

दोषदृष्टिवाले लोग कहते हैं : ''अंतरात्मा की सलाह लेकर सत्य-असत्य, अच्छा-बुरा हम पहचान सकते हैं, अतः बाह्य गुरु की आवश्यकता नहीं है ।''

किंतु यह बात ध्यान में रहे कि जब तक साधक शुचि और इच्छा-वासनारहितता के शिखर पर नहीं पहुँच जाता, तब तक योग्य निर्णय करने में अंतरात्मा उसे सहायरूप नहीं बन सकती ।

पाशवी अंतरात्मा किसी व्यक्ति को आध्यात्मिक ज्ञान नहीं दे सकती । मनुष्य के विवेक और बौद्धिक मत पर उसके अव्यक्त और अज्ञात मन का गहरा प्रभाव पड़ता है । प्रायः सभी मनुष्यों की बुद्धि सुषुप्त इच्छाओं तथा वासनाओं का एक साधन बन जाती है । मनुष्य की अंतरात्मा उसके अभिगम, झुकाव, रुचि, शिक्षा, आदत, वृत्तियाँ और अपने समाज के अनुरूप बात ही कहती है । अफ्रीका के जंगली आदिवासी, सुशिक्षित यूरोपियन और सदाचार की नींव पर सुविकसित बने हुए योगी की अंतरात्मा की आवाजें भिन्न-भिन्न होती हैं । बचपन से अलग-अलग ढंग से बड़े हुए दस अलग-अलग व्यक्तियों की दस अलग-अलग अंतरात्मा होती हैं । विरोचन ने स्वयं ही मनन किया, अपनी अंतरात्मा का मार्गदर्शन लिया एवं 'मैं कौन हूँ ?' इस समस्या का आत्मनिरीक्षण किया और निश्चय किया कि यह देह ही मूलभूत तत्त्व है । (ऐसा अंतरात्मा की अनर्थकारी प्रेरणावाला अनर्थकारी जीवन हो गया ।) ❍

पुन्य पुंज बिनु मिलहिं न संता

मनुष्य जब जप-ध्यान, पूजा-पाठ, स्नान-दान आदि सत्कर्म करता है तो उसका पुण्य बढ़ता है और संतों की संगति मिलती है तथा संतों की संगति में उसका चित्त लगता है । बिना पुण्य के संतों के संग में बैठ नहीं सकते । ब्रह्मज्ञानी के सत्संग में तो बिना पुण्य के कोई घुस ही नहीं सकता, पहुँच ही नहीं सकता ।

संत तुलसीदासजी कहते हैं :

पुन्य पुंज बिनु मिलहिं न संता ।

पुण्य-पुंज के बिना ऐसे महापुरुष मिलते नहीं हैं और अगर मिल भी जायें तो उनमें श्रद्धा टिकती नहीं है ।

स्वल्पपुण्यवतां राजन् विश्वासो नैव जायते ।

- पूज्य बापूजी

विराट गुरु-तत्त्व की स्मृति जगाओ

– पूज्य बापूजी

गुरुपूर्णिमा यह खबर देनेवाला पर्व है कि आप कितने भी लघु शरीर, लघु अवस्था में हों फिर भी आपके अंदर विराट छुपा है । जैसे लहर समुद्र से अलग होकर अपनेको मानेगी तो मौत की तरफ जायेगी, समुद्र से जुड़कर अपनेको देखेगी तो विशाल है, ऐसे ही जीवात्मा अपने परमात्म-चैतन्य की ओर देखेगा तो उसे गुरुत्व का एहसास होगा ।

आप लघु शरीर, लघु व्यापार, लघु कर्म में होते हुए भी विराट परमात्मा के सनातन अंश हैं, इस बात का संदेश देनेवाली तथा शम, दम, तितिक्षा, समाधान, ईश्वरप्रणिधान – ये सद्‌गुण सुविकसित करके आपको स्वस्थ, सुखी और सम्मानित जीवन का प्रत्यक्ष अनुभव करानेवाली पूर्णिमा गुरुपूर्णिमा है । इसे 'ज्ञानपूर्णिमा' भी कहते हैं । आषाढ़ महीने में आती है इसलिए 'आषाढ़ी पूर्णिमा' भी कहते हैं । वेदराशि के चार सुव्यवस्थित विभाग करनेवाले एवं विश्व का सर्वप्रथम आर्ष ग्रंथ रचनेवाले वेदव्यासजी के सम्मान में यह पूर्णिमा 'व्यासपूर्णिमा' के नाम से भी जानी जाती है । इस पर्व पर व्यासस्वरूप सच्चे ब्रह्मनिष्ठ सद्‌गुरु की पूजा करके जीव अपने लघुत्व को विराट में मिलाकर स्वयं में विराटता का अनुभव करता है ।

इस पवित्र पर्व पर जिसने गुरुदेव की पूजा कर ली, उसकी सारी पूजाएँ हो गयीं । गुरुदेव की पूजा के बाद दूसरी कोई पूजा शेष नहीं बचती । देवी-देवताओं की पूजा के बाद कोई पूजा रह जाय लेकिन ब्रह्मवेत्ताओं का ब्रह्मज्ञान जिसके जीवन में प्रतिष्ठित हो गया, फिर उसके जीवन में किसकी पूजा बाकी रहेगी ! जिसने सद्‌गुरु के ज्ञान को पचा लिया, सद्‌गुरु की पूजा कर ली उसके लिए किसीकी पूजा करना शेष नहीं रहता ।

व्यासपूर्णिमा हमें सिखाती है कि जो गुरु का आदर करता है वह आदरणीय हो जाता है । मैंने गुरु का आदर किया, मेरा कितने लोग आदर करते हैं मैं गिन नहीं सकता हूँ । मैंने अगर पैसों का आदर किया होता, ऐश-आराम का आदर किया होता तो मेरी जवानी दीवानगी की खाई में गिर जाती लेकिन मैंने गुरु का आदर किया, अपने जीवन का आदर किया तो मेरी जवानी प्रभु के रंग से रँग गयी और करोड़ों लोग उस प्रसाद से पावन हो रहे हैं – यह प्रत्यक्ष है ।

जैसे शालग्राम की पूजा कोई पत्थर की पूजा नहीं नारायण की पूजा है, शिवलिंग की पूजा कोई पत्थर की पूजा नहीं शिव की पूजा है, ऐसे ही गुरु का आदर, गुरु की पूजा यह ज्ञान की पूजा है, चैतन्य आत्मा का आदर करते हुए अपनी चेतना जगाने की पूजा है । जब तक मनुष्य को ज्ञान की प्यास रहेगी, सच्चे जीवन की प्यास रहेगी तब तक यह व्यासपूर्णिमा, गुरुपूर्णिमा का पर्व मनाया जाता रहेगा ।

इस पूर्णिमा का यह संदेश है कि आप अपनी लघु ग्रंथियों को खोल दो और अपने में छुपे हुए विराट गुरु-तत्त्व की स्मृति जगाओ । भगवान श्रीकृष्ण का संदेश है – स्मृति और संयम । व्यासजी का संदेश है – स्मृति, संयम और अपने गुरुत्व का साक्षात्कार ।

तुझमें राम मुझमें राम, सबमें राम समाया है ।
कर लो सभीसे स्नेह जगत में,
कोई नहीं पराया है ।। ❍

जब प्याला पिया गुरुप्रेम का, होगा असर किस जहर का ?

(पूज्य बापूजी के सत्संग-प्रवचन से)

वसिष्ठजी महाराज 'श्री योगवासिष्ठ महारामायण' में कहते हैं : ''हे रामजी ! त्रिभुवन में ऐसा कौन है जो संत की आज्ञा का उल्लंघन करके सुखी रह सके ?''

संत परम हितकारी होते हैं। वे जो कुछ कहें, उसका पालन करने के लिए डट जाना चाहिए । इसीमें हमारा कल्याण निहित है । महापुरुष की बात को टालना नहीं चाहिए ।

भगवान शंकर कहते हैं :

गुरूणां सदसद्वापि यदुक्तं तन्न लंघयेत् ।
कुर्वन्नाज्ञां दिवारात्रौ दासवन्निवसेद् गुरौ ।।

'गुरुओं की बात सच्ची हो या झूठी परंतु उसका उल्लंघन कभी नहीं करना चाहिए। रात और दिन गुरु की आज्ञा का पालन करते हुए गुरु के सान्निध्य में दास बनकर रहना चाहिए ।'

गुरुदेव की कही हुई बात चाहे झूठी दिखती हो फिर भी शिष्य को संदेह नहीं करना चाहिए, कूद पड़ना चाहिए उनकी आज्ञा का पालन करने के लिए ।

दिल्ली में अकबर का राज्य था उस समय की बात है । अकबर ने अपने पुत्र जहाँगीर को लाहौर इलाका राज्यसत्ता भोगने के लिए दिया था । जहाँगीर को शिकार की बहुत आदत थी और वह मुरगाबी (जल-कुक्कुट) नामक पक्षी के मांस का बड़ा शौकीन था । एक बार उसने लाहौर के पासवाले गुरदासपुर के घने जंगल में आखेट के लिए अपने अंगरक्षकों, सैनिकों और शिकारियों के साथ सात दिन तक वन-विचरण की योजना बनायी । वह अपने रसोइयों को भी ले गया था । वे लोग रोज मुरगाबी पक्षियों की हत्या करते और उनका मांस खाते थे ।

आखेट करते-करते एक दिन वे जंगल में रास्ता भटक गये । उनमें से कुछ लोग उत्तर दिशा में और दूसरे पश्चिम दिशा में आगे बढ़े । उत्तरवाला दल चलते-चलते भगवानदासजी नाम के एक संत के आश्रम में पहुँचा । वे संत अपने शिष्यों सहित पिंडौरी नामक उस स्थान के कुदरती शुद्ध हवामान तथा प्राकृतिक वातावरण में ब्रह्म-परमात्मा की चर्चा और मौन का अवलम्बन लेते हुए ब्रह्म-विश्रांति में रहते थे ।

भगवानदासजी महाराज का एक शिष्य था नारायणदास । एक दिन गुरु ने उसको कहा : ''बेटा ! बोलने से शक्ति का ह्रास होता है । मौन रहना, श्वासोच्छ्वास में ॐकार का अथवा सोऽहम् का जप करना । इससे अकृत्रिम आनंद मिलता है । हम जब तक नहीं आयें तब तक तुम यहीं रहना ।''

गुरु की आज्ञा, गुरु की सेवा साधु जाने,
गुरु सेवा कहाँ मूढ़ पिछाने ।

गुरुआज्ञा सुनकर नारायणदास नतमस्तक हुआ और मौन हो गया । अब उसी नारायणदास से जहाँगीर के सिपाहियों ने आकर पूछा : ''हम भटक गये हैं । फलाना- फलाना रास्ता किधर जाता है, किधर से आता है ?'' नारायणदास तो मौन था, कुछ बोला नहीं । सिपाहियों ने उसको हिलाया-डुलाया... 'बोलो, बोलो...' धमकाया भी

लेकिन कुछ असर नहीं हुआ तो सिपाहियों ने सोचा कि 'जहाँगीर ने जहाँ पड़ाव डाला है वहाँ इसको ले चलो । इसे दण्ड देंगे, मारपीट करेंगे तो अपने-आप बोलेगा ।'

ले गये और सत्‌शिष्य नारायणदास को जो कुछ अपशब्द बोलने थे बोले, डाँटना था डाँटा और धमकाना था धमकाया लेकिन नारायणदास ने मन में ठान लिया था कि 'गुरु की आज्ञा है कि जब तक हम न आयें तब तक बोलना नहीं तो मैं उस आज्ञा का जान की बाजी लगाकर भी पालन करूँगा ।' उसने मारपीट सह ली, गालियाँ सह लीं लेकिन कुछ बोला नहीं ।

चाहे भौतिक जगत में हो चाहे आध्यात्मिक जगत में, बिना कुछ-न-कुछ नियमनिष्ठा, पुरुषार्थ और बिना परीक्षा के भव्य अनुदान नहीं मिला करते हैं और मिल भी जायें तो टिकते नहीं हैं । मेरी भी गुरु के द्वार पर कैसी-कैसी परीक्षाएँ हुईं, वहाँ कैसी-कैसी कठिनाइयाँ आयीं ! विघ्न, बाधा और कष्ट अनुदानों को झेलने की योग्यता देते हैं, इसलिए डरना नहीं चाहिए, निराश नहीं होना चाहिए।

सिपाही नारायणदास को जहाँगीर के पास ले आये । जहाँगीर थका हुआ था, बोला : ''इसको सुबह देखेंगे ।'' फौजी मुसलमान थे और यह हिन्दू साधु का शिष्य था, वे रास्ता भटके हुए थे और यह बोल नहीं रहा था तो वे गुस्से में कहने लगे : ''यह ढोंग करता है और हमको सताता है, यह तो हमारा दुश्मन है काफिर !''

अब एक सिपाही तो था नहीं । मार झेलनेवाला, गालियाँ झेलनेवाला अकेला और मारनेवाले, गालियाँ देनेवाले अनेक लेकिन कैसी है उसकी दृढ़ता ! सुबह जहाँगीर के सामने हाजिर कर दिया मुजरिम को । उसका दोष तो कुछ नहीं था, वह तो अपने गुरुजी की मौन रहने की आज्ञा पाल रहा था । जहाँगीर ने उसको डाँटा-फटकारा । उसके कहने से सिपाहियों ने जो कुछ मारपीट करनी थी, की लेकिन वह बोलता ही नहीं था । जहाँगीर का गुस्सा और बढ़ गया : ''हम पूछ रहे हैं और यह कुछ बोलता नहीं है ! आखिर यह समझता क्या है ! इसे लाहौर ले चलो, वहाँ कठोर दण्ड देकर इससे बुलवाया जायेगा ।''

लाहौर में भीषण यातनाएँ भी नारायणदास का मौन-व्रत भंग नहीं कर सकीं तो जहाँगीर आगबबूला हो उठा । उसने आदेश दिया : ''इसको जहर घोलकर पिला दो ।'' जहर घोला गया, कटोरा आया । नारायणदास ने कटोरे को एकटक देखा, गुरु का सुमिरन किया और चिंतन किया, 'ॐ ॐ... यह जहर मेरे को कुछ नहीं कर सकता । मुझ पर विष का असर नहीं होगा ।' मन में 'ॐ' जपते हुए उसे पी लिया । गुरु का वचन पाला है तो फिर इसका वचन विष कैसे न माने ! जहाँगीर की आँखें फटी रह गयीं । वह देख रहा था कि अब गिरेगा, अब लड़खड़ायेगा लेकिन नारायणदास के चेहरे पर वही शांति, वही निर्भीकता थी । जहाँगीर गुस्साया, बोला : ''अभी असर नहीं होता... ! दूसरा प्याला दो ।''

नारायणदास उसको भी पी गया । तीसरा प्याला दिया गया, उसका भी कोई असर नहीं हुआ तो जहाँगीर को संदेह हुआ कि 'कहीं जहर नकली तो नहीं है ?' तो बिल्ली को पिलाया गया । बिल्ली उसी समय कराहते हुए मर गयी । जहाँगीर देखता ही रह गया और बोला : ''जहर तो तेज है, फिर असर क्यों नहीं हो रहा है ! चौथा प्याला दो ।'' चौथा भी पिया । फिर पाँचवाँ, छठा... जैसे हारा हुआ जुआरी दुगना दाँव खेलता है, ऐसे ही जहाँगीर गुस्से में और जुल्म किये जा रहा था ।

नारायणदास की गुरु के प्रति दृढ़ श्रद्धा का फल यह हुआ कि गुरु-सुमिरन और दृढ़ संकल्प से विष के विषैले स्वभाव को उसने छः प्यालों

तक मार दिया, लेकिन जहाँगीर रुका नहीं, बोला : ''अभी तक बोलता भी नहीं, मरता भी नहीं... ! सातवाँ प्याला दो ।''

सातवाँ प्याला दिया तो नारायणदास ईश्वर को कहते हैं कि 'अब तेरी मरजी पूरण हो...।'

वह सर्व-अंतर्यामी, सर्वेश्वर, परमेश्वर, विश्वेश्वर कैसी लीला करता है ! जहर का सातवाँ प्याला तो पिया है भगवानदासजी के आज्ञाकारी सत्‌शिष्य नारायणदास ने, पर उसका असर हुआ जहाँगीर पर !

'तौबा, तौबा... ! अल्लाह... !! मैं मरा जा रहा हूँ...'- ऐसा कहकर वह छटपटाता हुआ गिर पड़ा । 'जहाँपनाह ! जहाँपनाह !!' कहनेवाले हाथ मलते रहे, चाकरी करते रहे; जहाँपनाह मर गया । सब थर-थर काँपने लगे, घबराने लगे ।

भगवान के प्यारे संत या भक्त जुल्म सहते-सहते जुल्म पीते जाते हैं तो परमेश्वर से नहीं रहा जाता । मेरे साथ किसीने जुल्म किया, मैं तो कुछ नहीं बोला तो ऐसा हुआ कि किसीको ब्रेन-हैमरेज हो गया और वह आकाश से (हेलिकॉप्टर से) ही चल पड़ा । और किसीने कुछ जुल्म किया, अति किया तो उनका कैसा-कैसा हाल हो गया ! कोई जेल में चला गया, किसीको कुछ, किसीको कुछ... । तो आप जुल्म सहते हैं और ईश्वर के नाते अडिग रहते हैं तो ईश्वर से फिर जुल्मियों को दण्ड दिये बिना रहा नहीं जाता ।

भगवानदास महाराजजी अपने स्थान पर आये तो देखा कि नारायणदास नहीं है । वे सोचने लगे कि 'मेरा शिष्य नारायणदास मेरी आज्ञा का उल्लंघन करके आश्रम छोड़कर जाय ऐसा नहीं है ।' गुरु चुप होकर ध्यान में बैठे तो सारा रहस्य दिख गया । महाराजजी ने देख लिया कि 'मेरे सत्‌शिष्य को जहाँगीर के सैनिक इस प्रकार मारते-पीटते ले गये और ऐसे-ऐसे जहर के प्याले पिलाये और अभी बंदी बनाकर रखा है ।'

महाराज से रहा नहीं गया । वे सूक्ष्म शरीर से झट-से वहाँ प्रकट हो गये, बोले : ''यह मेरा शिष्य है और इसने मौन-व्रत रखा है । मेरी आज्ञा थी कि जब तक मैं नहीं आऊँ तब तक मौन खोलना नहीं । तुम लोगों ने इसको नाहक जहर पिलाया । इसको पिलाये गये छः-छः प्याले जहर को प्रकृति ने, ईश्वर ने करुणा करके सँभाल लिया लेकिन सातवें प्याले का असर तुम्हारी तरफ भेजा । तुम्हारे जहाँपनाह उसीसे मरे हैं ।''

सेनापति और सिपाही गिड़गिड़ाने लगे कि ''महाराज ! बख्शो, रहमत करो... हमारे जहाँपनाह जहाँगीर को जीवनदान दो ।''

महाराज बोले : ''पहले मेरे शिष्य को बाइज्जत छोड़ दो ।''

उन्होंने हाथाजोड़ी करके माफी-वाफी माँगकर नारायणदास को तुरंत बाइज्जत छोड़ दिया ।

भगवानदासजी बोले : ''ठीक है, हम तो जाते हैं । राजवैद्य ! यह जिस प्रकार का कातिल जहर है उसका तुम उपचार करो, भगवान की दया से ठीक हो जायेगा ।''

''महाराज ! रहमत करो, बख्शो, बख्शो...।''

''चलो, हम देखते हैं उपचार करो ।''

थोड़ा उपचार हुआ, बाबा ने मीठी नजर डाली और जहाँगीर का अंतवाहक शरीर जो भटक रहा था वह वापस स्थूल शरीर में घुसा । जहाँगीर ने हाथ-पैर हिलाये, खुशी छा गयी । महाराज का अभिवादन हुआ। अपने शिष्य नारायणदास को लेकर भगवानदासजी जंगल की तरफ चले गये ।

एक सप्ताह में जहाँगीर पूर्णरूप से ठीक हो गया किंतु इस घटना से वह इतना भयभीत हो गया था कि उसने पिंडौरी जाकर भगवानदासजी से माफी माँगी व प्रायश्चित्त बताने की प्रार्थना की । भगवानदासजी ने कहा : ''बेटा ! जा, आगे

से किसी साधुपुरुष को निरर्थक परेशान न करना। यही तुम्हारा सच्चा प्रायश्चित्त होगा।''

जहाँगीर और उसके सिपाहियों की क्रूरता, नारायणदास का मौन और दृढ़ गुरुभक्ति, वे परिस्थितियाँ और उन पर विजय पाने का नारायणदास का सामर्थ्य समय की सरिता में सरक गया। क्रूरों का क्रूर आचरण उन्हें दुःखद योनियों में ले गया, गुरुभक्तों की साधना और दृढ़ता उन्हें ऊँची अवस्था में ले जायेगी लेकिन परम सत्य तो यह है कि जिस सच्चिदानंद की सत्ता से सज्जनता और क्रूरता और उनके फल हो-होके बदल जाते हैं, उस अबदल आत्मा में जो प्रतिष्ठित हो गये वे आत्मवेत्ता स्थितप्रज्ञ पुरुष धन्य-धन्य हैं ! उनका दर्शन करनेवाले धन्य हैं, उनके विचार सुनने-समझनेवाले धन्य हैं ! ❍

पृथ्वी का देव व स्वर्ग का देव

(पूज्य बापूजी के सत्संग-प्रवचन से)

एक होता है पृथ्वी का देव, दूसरा होता है स्वर्ग का देव। मनुष्य तपस्या और पुण्य करके स्वर्ग का देव बनता है, फिर वैभव, सुख और अप्सरा आदि का नाच-गान आदि भोग भोगकर उसके पुण्य का क्षय होता है। जो कष्ट सहता है, तपस्या करता है, जप करता है, नियम करता है, सद्गुरु को रिझाता है और सद्गुरु-तत्त्व को पाने का यत्न करता है, भोग के लिए, स्वर्ग के लिए कर्म नहीं करता लेकिन कर्म के लिए कर्म करता है और कर्म का फल भगवान को, सद्गुरु को अर्पित कर देता है वह पृथ्वी का देव है। स्वर्ग का देव अप्सराओं का सुख भोगके पुण्य-नाश करता है और पृथ्वी का देव तपस्या करके पाप-नाश करके अपने सुखस्वभाव में जग जाता है। ❍

तर्क से नहीं होता तत्त्वज्ञान

(समर्थ स्वामी रामदासजी महाराज की वाणी)

सत्य खोजते-खोजते प्राप्त हो जाता है। हे मन ! बोध होते-होते होता है। ज्ञान होता है परंतु यह सब केवल श्री सद्गुरु की प्राप्ति और उनका सहवास प्राप्त होने से और सद्गुरु-स्वरूप में व्यक्त, सदेह, सगुण परमात्मा की कृपा और उनका अनुराग प्राप्त करने से ही हो सकता है। अतः सद्गुरु के सत्संग का लाभ लेकर ब्रह्म-निश्चय को प्राप्त करो।

संतोष की प्राप्ति पिण्ड-ब्रह्माण्ड के ज्ञान से नहीं होती। तत्त्व का ज्ञान बौद्धिक तर्क और अनुमान तथा ज्ञान से नहीं होता; कर्म में संलग्न रहने से, यज्ञ करने से तथा शरीर द्वारा विषयों के भोग का त्याग करने से नहीं होता। वह संतोष और समाधान तथा वह शांति तो श्री सद्गुरुजी की कृपादृष्टि और उनकी प्रीति से ही प्राप्त होती है।

'तत्त्वमसि' महावाक्य, वेदांत-तत्त्व, वेदांत में आया हुआ पंचीकरण सिद्धांत – ये सब संकेत हैं, जो वाणी से परे स्थित उस परब्रह्म की ओर श्री सद्गुरु द्वारा किये गये हैं। इन संकेतों का आधार लेकर सद्गुरु की सहायता से सत्‌शिष्य को अपने अंतःकरण में ब्रह्मसाक्षात्कार उसी प्रकार करना होता है, जिस प्रकार आकाश में द्वितीया का चंद्रमा शाखा का संकेत देकर दिखानेवाले के संकेत के आधार पर व्यक्ति को शाखा को छोड़ चंद्रमा को स्वयं ही देखना होता है और न दिखने पर चंद्रमा दिखने तक दिखानेवाले व्यक्ति से बार-बार पूछना होता है और अंत में चंद्रमा को साक्षात् देखना होता है।

दीक्षा से सुधरती है जीवन-दशा

(पूज्य बापूजी के सत्संग-प्रवचन से)

उस मनुष्य का जीवन बेकार है जिसके जीवन में किन्हीं ब्रह्मनिष्ठ सद्गुरु की दीक्षा नहीं है । दीक्षारहित जीवन विधवा के श्रृंगार जैसा है । बाहर की शिक्षा तुम भले पाओ किंतु उस शिक्षा को वैदिक दीक्षा की लगाम देना जरूरी है । दीक्षाविहीन मनुष्य का जीवन तो बर्बाद होता ही है, उसके संपर्क में आनेवालों का भी जीवन बर्बाद होने लगता है... खाया-पिया, दुःखी-सुखी हुए और अमर तत्त्व को जाने बिना मर गये ।

दीक्षा के बिना सांसारिक आवागमन से मनुष्य की मुक्ति नहीं हो सकती । यदि कोई अंधा व्यक्ति अकेला सड़क पर दौड़ रहा है तो वह दौड़ तो सकता है किंतु दुर्घटना का होना निश्चित है । गुरु के बिना इस संसार की असारता का रहस्य-विषयक ज्ञान नहीं हो सकता और ज्ञान के बिना जीव की मुक्ति नहीं हो सकती, जैसे दिशाविहीन नौका गहन समुद्र में कभी तट को प्राप्त नहीं कर सकती । धन, मान या पद से कोई गुरु से दीक्षा प्राप्त नहीं कर सकता । दीक्षा तो श्रद्धावान, सौम्य गुणवाले, विनीत शिष्य ही प्राप्त कर सकते हैं । धन का, सत्ता का अहंकार तथा काम, क्रोध, लोभ, मोह आदि सब विकार श्रद्धारूपी रसायन में पिघल जाते हैं ।

यह श्रद्धारूपी रसायन चिंता, भय को अलविदा कर देता है और परमात्म-रस से भरा दीवाना बना देता है । नश्वर शरीर से संबंधित अपनी हीनता भी याद नहीं रहती और अपना अहंकार भी याद नहीं रहता अपितु श्रद्धालु दीक्षा पाकर अपनी शाश्वतता की तरफ उन्मुख होने लगता है । इसलिए जीवन में दीक्षा, श्रद्धा और सत्संग की अनिवार्य आवश्यकता है ।

मंत्रदीक्षा देनेवाले गुरु तीन प्रकार के होते हैं । एक होते हैं बाजारू गुरु, जो मंत्रदीक्षा का धंधा लेकर चल पड़ते हैं ।

कन्या-मन्या कुर्र... तू मेरा चेला, मैं तेरा गुर्र... ।
दक्षिणा धर्र... तू चाहे तर्र चाहे मर्र... ।।

अला बाँधूँ, बला बाँधूँ... भूत बाँधूँ, प्रेत बाँधूँ...
डाकिनी बाँधूँ, शाकिनी बाँधूँ...

इस प्रकार के लोग मनचले होते हैं । खुद तो बीड़ी पीना, क्या-क्या गलत कर्म करना और साथ में दूसरों को मंत्रदीक्षा देना ! अरे, मंत्रदीक्षा कोई मजाक की बात है ! इसमें तो बड़ी जिम्मेदारी होती है, अपनी तपस्या का अंश देना होता है । बाजारू लोग यह बात नहीं जानते । विवेकानंदजी ने ऐसे लोगों की अच्छी तरह से खिंचाई की ।

दूसरे होते हैं संप्रदाय-विशेष के गुरु, जो अपने-अपने संप्रदाय का मंत्र देते हैं । कोई रामानंदी संप्रदाय के हैं तो 'सीताराम-सीताराम' मंत्र देंगे, वैष्णव संप्रदाय के हैं तो भगवान विष्णु का मंत्र देंगे, शैव संप्रदाय के हैं तो 'ॐ नमः शिवाय' देंगे । कोई मुल्ला-मौलवी है तो 'अल्लाहो अकबर...' - इस प्रकार सिखायेगा अपने संप्रदाय, परम्परा के अनुसार । कोई विरले-विरले होते हैं लोकसंत, जो वैदिक परम्परा के अनुसार मंत्र देते हैं । उनका अपना कोई अलग संप्रदाय नहीं होता, वे तो जिसका जिससे भला होता हो वही मंत्र

उसको देते हैं ।

भगवान गणपति की परम्परावाले गणपतिजी का मंत्र देंगे, अच्छा है; गायत्री की परम्परावाले सबको गायत्री मंत्र देंगे, ठीक है, अच्छा है; यह भी वैदिक परम्परा है, हमारा इससे विरोध नहीं है, ठीक है । उन बाजारू गुरुओं से तो ये बहुत अच्छे हैं लेकिन इनसे भी बढ़कर एक विलक्षण गुरु होते हैं नारदजी जैसे, कबीरजी जैसे, नानकजी जैसे, जगद्गुरु आद्य शंकराचार्यजी जैसे, भगवत्पाद लीलाशाहजी बापू जैसे, जो सामनेवाले का जल्दी-से-जल्दी हित हो इस प्रकार की मंत्रदीक्षा और मंत्र जपने की रीति बताते हैं । हम भी दीक्षा देते समय किस विधि से जप करने पर कौन-सा लाभ होता है आदि सब बता देते हैं । दीक्षित साधक एक बार ध्यान योग शिविर में आ जाते हैं न, तो सारी बातें उनको हस्तामलकवत् (हाथ पर रखे आँवले की तरह प्रत्यक्ष) हो जाती हैं, प्रत्यक्ष एहसास हो जाता है । फिर उनको लगता है कि 'इतने साल हम कहाँ झख मार रहे थे !' ऐसे-ऐसे खजाने खुलने लगते हैं दीक्षा के बाद, सारे रहस्य खुलने लगते हैं ।

तो आप जहाँ हैं वहीं से आपको यात्रा करनी होगी । जैसे आप दिल्ली में हैं तो यात्रा मुंबई से थोड़े ही प्रारंभ करेंगे, दिल्ली से ही प्रारंभ करनी पड़ेगी, ऐसे ही आपका मन और प्राण कौन-से केन्द्र में ज्यादा रहते हैं उस प्रकार के मंत्र की आपकी पसंदगी होगी तो आपके जीवन में परिवर्तन जल्दी होगा । इसीलिए लोकसंत, सद्गुरु सभीको एक प्रकार का मंत्र नहीं देते । वे विद्यार्थियों को सारस्वत्य मंत्र, स्वास्थ्य-अर्थियों को स्वास्थ्य मंत्र, मुक्ति-अर्थियों को प्रणव (ॐ) युक्त मंत्र अथवा प्रणव - इस तरह अलग-अलग मंत्र देते हैं, जिससे उनका विकास जल्दी होता है ।

मंत्रदीक्षा देते समय हम ऐसे-ऐसे प्रयोग और प्राणायाम सिखा देते हैं, जिससे साधकों की बुद्धि का नाड़ी-जाल शुद्ध हो जाता है, बुद्धि में चमत्कारिक परिवर्तन होने लगते हैं । फिर लोग बोलते हैं कि 'बापूजी ने चमत्कार कर दिया ।' वास्तव में चमत्कार का खजाना पड़ा था, मैंने कुंजी दिखा दी और आपके जीवन में फायदे होने लगे । फिर मंत्रजप की और रीति भी बताता हूँ जिससे श्वासों का नियंत्रण होने से अकाल मृत्यु टल जाती है, आयुष्य लम्बा होने में मदद मिलती है और मन एकाग्र करने में बड़ी आसानी हो जाती है । श्वास (प्राण) तो हमारे पूरे शरीर में जाता है तो भगवदीय रस, भगवदीय ऊर्जा, भगवदीय आभा भी पैदा होने लगती है । जैसे जब आप किसीकी निंदा सुनते हैं या करते हैं तो एक प्रकार के हानिकारक रसायन आपके शरीर में पैदा होते हैं, वैसे ही जब आप भगवान को प्रेम करते हुए भगवान का नाम लेते हैं तो सत्त्वमय, सुखमय, अमृतमय रसायन पैदा होते हैं, इसीलिए जीवन में परिवर्तन हो जाता है । 'मैंने दीक्षा ली और यह परिवर्तन हो गया, वह हो गया... ।' इन चमत्कारों का रहस्य यह है कि आपके खजानों की चाबी भी मैं जानता हूँ और ताला भी मैं जानता हूँ । दीक्षा देते समय वह चाबी दे देता हूँ तो चमत्कार होता है ।

तो जो वैदिक दीक्षा लेकर भक्ति करते हैं उनकी भक्ति क्लेशनाशिनी हो जाती है । वे मनमुखी नहीं गुरुमुखी होते हैं । उनकी आधी साधना वैदिक दीक्षा लेनेमात्र से पूरी हो जाती है और फिर बताये गये नियम के अनुसार थोड़े दिन की ही साधना से उनका जीवन जीवनदाता के ज्ञान-ध्यान से, रस से रसमय हो जाता है । वे जीते-जी मुक्ति के अधिकारी हो जाते हैं और मुक्ति पा लेते हैं । ❍

जपात् सिद्धिर्न संशयः

(पूज्य बापूजी के सत्संग-प्रवचन से)

जप करने से वायुमंडल में एक प्रकार का भगवदीय रस, भगवदीय आनंद व सात्त्विकता का संचार होता है, जो आज के वातावरण में विद्यमान वैचारिक प्रदूषण को दूर करता है । भगवन्नाम-जप के प्रभाव से दिव्य रक्षा-कवच बनता है, जो जापक को विभिन्न हलके तत्त्वों से बचाकर आध्यात्मिक व भौतिक उन्नति के मार्ग पर अग्रसर करता है ।

गुरु के द्वारा मंत्र मिल गया तो आपकी आधी साधना तो दीक्षा के प्रभाव से ही हो गयी और पूर्वकृत पाप तथा पूर्वकृत गंदी आदतें दुबारा नहीं दोहरायें तो पहले के पाप क्षम्य हो जाते हैं और आप निर्दोष हो जाते हैं । ज्यों-ज्यों जप बढ़ेगा त्यों-त्यों पाप नष्ट होंगे लेकिन कोई भयंकर महापाप है तो ज्यादा जप-अनुष्ठान करने की आवश्यकता होती है ।

भगवान आद्य शंकराचार्य के संप्रदाय में बहुत बड़े विद्वान हो गये विद्यारण्य स्वामी । उनको गुरुमंत्र मिला और गुरु ने कहा कि 'अनुष्ठान करो ।'

एक अक्षर का मंत्र हो तो १,११,११० जप और उससे अधिक अक्षरों के मंत्र के लिए मंत्र में जितने अक्षर हैं उतने गुना* जप करने से इष्टमंत्र सिद्ध होता है । ऐसे अनुष्ठान से अनिष्ट छू हो जाते हैं और जिस देव का मंत्र है वह देव प्रकट भी हो जाता है । विद्यारण्य स्वामी ने एक अनुष्ठान किया, दो, तीन, चार, पाँच, छः... ऐसा करते-करते अनेक अनुष्ठान हो गये । देखा कि अभी तक इष्टदेवता माँ भगवती प्रकट नहीं हुईं, कुछ चमत्कार नहीं हुआ । 'यह सब ढकोसला (पाखण्ड) है, मैं नाहक इसमें फँसा ।'- ऐसा विचार आया । तो एकांत जगह में जहाँ कुटिया बनाके वे रह रहे थे, वहाँ लकड़ियाँ इकट्ठी कीं और अग्नि प्रज्वलित करके धार्मिक पुस्तकें, पूजा-पाठ की सामग्री, माला, गौमुखी आदि सब अग्निदेवता में स्वाहा कर दिया ।

जब अग्नि भभक-भभककर सबको स्वाहा कर रही थी, उतने में एक दिव्य आभासम्पन्न महिला वहाँ प्रकट हो गयीं और विद्यारण्य स्वामी को कहने लगीं : ''यह तुम क्या कर रहे हो ?''

बोले : ''माताजी ! यह सब जप-वप ढकोसला है । मैंने अनेक अनुष्ठान किये, मंत्रजप से कुछ नहीं होता । अब मैं लोगों में प्रचार करूँगा कि धार्मिक बनके समय बर्बाद मत करो । कमाओ, खाओ और मौज-मजा करो । मैं नास्तिकवाद का प्रचार करूँगा । ईश्वर जैसी कोई चीज नहीं, मंत्र-वंत्र ये सब फालतू बातें हैं ।''

देवी ने कहा : ''अच्छा ! तुम्हें जो करना है करो लेकिन पीछे मुड़के भी तो जरा देखो ।''

विद्यारण्य स्वामी ने देखा कि जैसे आगे अग्नि जल रही है, वैसे ही पीछे भी भभक-भभक करके लपटें दिख रही हैं और उनमें धड़ाक-धड़ाक करके ऊपर से बड़े-बड़े पहाड़ जैसे पत्थर गिरकर फूट रहे हैं । पहला, दूसरा, तीसरा, चौथा... ऐसा करके अनेक पत्थर भयंकर ध्वनि करते हुए उस अग्नि में नष्ट हो गये । वे चकित होकर सोचने लगे कि 'यह मैं क्या देख रहा हूँ ! जिन देवी ने मुझसे कहा था वे इस रहस्य को जरूर जानती होंगी ।'

पीछे मुड़कर देखा तो देवी हैं नहीं ! वे कहाँ गयीं ? युवक थे, वन में इधर-उधर जरा आपाधापी की, पुकार लगायी : ''हे मातेश्वरि ! हे देवेश्वरि !!

* जैसे तीन अक्षर के मंत्र हेतु : १,११,११० x ३

हे विश्वेश्वरि !!! कृपा करो । आप आयी थीं, अब अदृश्य हो गयी हो । मैं नहीं जानता वास्तव में आप कौन हो ? मेरा मार्गदर्शन करो ।''

आकाशवाणी हुई कि ''तुमने तो धर्म का आश्रय, जप का आश्रय, गुरुआज्ञा का आश्रय छोड़ दिया, अब तुम अनाथ हो । जाओ भटको, मनमानी करो । कई अनाथ भटक रहे हैं और मरने के बाद माँ का गर्भ नहीं मिलने पर तो नाली में बह रहे हैं । ऐसे ही तुम भी जाओ, जैसा भी करना है करो । सूर्य नहीं है ऐसा प्रचार करने से क्या सूर्य का अस्तित्व मिट जायेगा ? ईश्वर नहीं हैं ऐसा प्रचार करने से क्या ईश्वर मिट जायेंगे ?''

''माताजी ! यह मैंने क्या देखा कि अनेक बड़े भयंकर पत्थर अग्नि में जलकर नष्ट हो गये !''

देवी बोली : ''तुम्हारे पूर्वजन्मों के जो भयंकर महापातक थे, वे एक-एक करके अनुष्ठानों से नष्ट हुए ।''

''माताजी ! कृपा करो, मार्गदर्शन दो ।''

देवी बोलीं : ''मार्गदर्शक गुरु के मंत्र का तुमने अनादर किया । उन गुरु की पूजा-प्रार्थना करके उनसे क्षमायाचना करो । गुरु के स्पर्श अथवा गुरु के दिये हुए मंत्र को और माला को अपना कल्याण करनेवाला परम साधन मानकर फिर से जप-अनुष्ठान करोगे तो तुम्हें सिद्धियाँ मिलेंगी ।''

विद्यारण्य स्वामी ने रोते हुए अपने गुरु के चरणों में गिरकर यह सारी घटना सुनायी । कृपालु गुरु ने उन्हें पुनः माला, ग्रंथ आदि दे दिया और कहा कि ''अब एक ही अनुष्ठान से तुम सफल हो जाओगे ।''

उन्होंने ऐसा ही किया और इतने बड़े सिद्ध हुए कि उन्होंने ग्रंथ रचा और उस ग्रंथ से मुझे (पूज्य बापूजी को) परमात्मा की प्राप्ति हुई ।

जैसे श्रीकृष्ण की 'गीता' से अर्जुन को तत्त्व-प्रसादजा मति मिल गयी, ऐसे ही गुरुमंत्र के प्रभाव से उन महापुरुष की जो पूर्वजन्मों के महापातकों की भयंकर कालिमाएँ थीं, वे नष्ट हुईं और उन्हें तत्त्वज्ञान, तत्त्व-प्रसादजा बुद्धि मिली । उन्होंने 'पंचदशी' नामक प्रसिद्ध ग्रंथ लिखा । वेदांत के साधक और ज्ञानमार्ग की साधना करनेवाले सभी संत-महात्मा और भक्त उस ग्रंथ से परिचित हैं ।

तो जप करते हैं और कुछ धड़ाक-से हो जाय, ऐसा नहीं होता । जप के प्रभाव से पहले अपने तन की शुद्धि, मन की शुद्धि और पूर्वकर्मों की शुद्धि होती है और जब वह कर्जा निपट जाय तब जमा होगा न ! बैंक बैलेंस कब होगा ? 'मैंने रोज दो सौ, पाँच सौ, हजार रुपये बैंक में दिये, अभी तक मेरे एक लाख रुपये हुए नहीं !...' अरे बुद्धूजी ! साढ़े तीन लाख पहले के बैंक के तुम्हारे ऊपर बाकी थे, वही अभी जमा होने में पचीस हजार चाहिए । तेरा जमा कैसे होगा ? पहले कर्जा पूरा होगा तब जमा होगा न बेटे ! ऐसे ही जप से पातकनाशिनी ऊर्जा पैदा होती है, जिससे संचित पापों का नाश होता है और पुण्य बढ़ता है । अतः निरंतर जप करते रहना चाहिए ।

शास्त्र कहते हैं :

जपात् सिद्धिः जपात् सिद्धिः जपात् सिद्धिर्न संशयः ।

नीच कर्मों से बचकर किये गये जप से अवश्य ही सिद्धि मिलती है, इसमें कुछ भी संदेह नहीं है । ○

विशेष सूचना

सूचित किया जाता है कि 'ऋषि प्रसाद' पत्रिका की सदस्यता के नवीनीकरण के समय पुराना सदस्यता क्रमांक/रसीद क्रमांक एवं सदस्यता 'पुरानी' है- ऐसा लिखना अनिवार्य है । सदस्यता की शुरुआत किस माह से करनी है यह भी अवश्य लिखें । जिसकी रसीद में ये नहीं लिखे होंगे, उसको नया सदस्य माना जायेगा । आजीवन सदस्यों के अलावा नये सदस्यों की सदस्यता एक माह पूर्व से शुरू की जायेगी तथा सदस्यता के अंतर्गत उन्हें एक पूर्व-प्रकाशित अंक भेजा जायेगा ।

जो तेरा है सो मेरा हो जाय

(पूज्य बापूजी के सत्संग-प्रवचन से)

राजा बृहदश्व बड़ी ही श्रद्धा से अपने गुरुदेव का पूजन करता था । वह गुरु में भगवद्बुद्धि करके उनके सम्मुख बैठकर उन्हें एकटक निहारा करता था । ऐसे समय गुरु के रूप में छिपे हुए परमात्मा की कृपा उस पर बरसने लगती । इससे उसका पुण्य बढ़ता गया । राजा बृहदश्व के राजकाज में कृषि-उत्पादन और वृष्टि आदि समुचित रूप से होने लगे । जो राजा पुण्यात्मा होता है, प्रकृति के सब साधन उसके अनुकूल होने लगते हैं । अन्न, धन, वैभव बढ़ता हुआ देखकर बृहदश्व को यह विचार आया कि 'मुझे अश्वमेध यज्ञ करने चाहिए । सौ अश्वमेध यज्ञ करनेवाला इंद्र बनता है ।'

बृहदश्व ने अश्वमेध यज्ञ का श्रीगणेश किया । राजा यज्ञ करता रहा ।

बृहदश्व के गुरुदेव किसी और जगह एकांत में समाधि में बैठे थे । जब समाधि से उतरे तब सोचा कि 'अहोभाव से एकटक निहारकर मुझको अपने में और अपनेको मुझमें देखनेवाला मेरा शिष्य बृहदश्व क्या कर रहा है ?'

गुरु ने देखा कि 'बृहदश्व तो सौ यज्ञ करके पुण्य कमाने के चक्कर में लगा है । बानवे यज्ञ वह कर चुका है । अब सौ पूरे करेगा तो फिर मरकर इंद्र बनेगा और हजारों-लाखों वर्ष स्वर्ग के भोग भोगेगा । मेरे सान्निध्य में तो पुण्यलाभ किया मगर अप्सराओं का नाच-गान देखकर वह पुण्य खत्म होने पर फिर मनुष्य बनेगा । अरे ! यह कहाँ जा रहा है ! मनुष्य से गिरते-गिरते हिरण, खरगोश और कीड़े आदि की योनियों में भी तो जा सकता है !'

गुरुदेव ने अपना शरीर छोड़ दिया और नया शरीर धारण किया । वे जीवन्मुक्त महापुरुष कभी शरीर को 'मैं' नहीं मानते, सदा **'अहं ब्रह्मास्मि'** के नित्य निरंजन स्वरूप में रमणशील होते हैं । उनके लिए शरीर छोड़ना और धारण करना भी खेल है । जैसे वामन भगवान अपने भक्त बलि के आगे ब्रह्मचारी का रूप लेकर आ गये, ऐसे ही राजा बृहदश्व के गुरु नौ वर्ष के बटुक ब्रह्मचारी बनकर पधारे । बृहदश्व ९९ यज्ञ पूरे कर चुका था, सौवाँ यज्ञ चल रहा था ।

तीन चीजें हमारा पीछा जन्म-जन्मांतर तक करती चली जाती हैं । एक तो हमारे कर्म; जब तक आत्मज्ञानी गुरु की ज्ञानाग्नि हमारे कर्मों को नहीं जलाती, तब तक कर्म पीछा नहीं छोड़ते । दूसरा चैतन्य परमात्मा, ईश्वर पीछा नहीं छोड़ते और तीसरा सद्गुरु सत्शिष्य का पीछा नहीं छोड़ते ।

बृहदश्व के पास गुरुदेव आये केवल नौ वर्ष के बटुक वामदेव के स्वरूप में । राजा उठकर खड़ा हो गया । अर्घ्य-पाद्य से उनका पूजन करके आसन दिया । बृहदश्व बोला : ''आज्ञा दीजिये प्रभु ! मेरे द्वार पर जो भी ब्राह्मण आता है उसे मैं मनचाहा दान देता हूँ । अश्वमेध यज्ञ करनेवाले के लिए यह नियम है कि याचक ब्राह्मण जो कुछ भी माँगे वह अदेय नहीं होना चाहिए । महाराज ! मेरे लिए कुछ भी अदेय नहीं है । आप जो आज्ञा करें सो मैं आपको अर्पित करूँगा ।''

बटुक ब्राह्मण बोले : ''अगर बदल गया

तो ?''

बृहदश्व : ''महाराज ! नहीं बदलूँगा ।''

ब्राह्मण : ''पहले संकल्प कर ।''

जैसे वामन भगवान ने बलि से अंजलि में जल देकर संकल्प कराया था, ठीक वैसे ही बृहदश्व से सद्गुरुदेव भगवान वामदेवजी ने संकल्प कराया ।

ब्राह्मण : ''संकल्प कर कि जो कुछ मैं माँगूँगा वह सब कुछ तू दे देगा ।''

बृहदश्व : ''महाराज ! आप जो कुछ भी माँगेंगे, मैं सब कुछ दूँगा । आप हजार सोना मोहरें, दस हजार सोना मोहरें तो क्या, अरे मेरा पूरा राज्य भी माँगेंगे तो भी मुझे देना है क्योंकि अश्वमेध यज्ञ करनेवाले को अपने वचन का पालन करना पड़ता है ।''

ब्राह्मण : ''मैं और कुछ नहीं माँगता हूँ, जो तेरा है सो मेरा हो जाय ।''

कृपालु गुरुदेव ने ऐसा माँग लिया कि बृहदश्व निहाल हो जाय, कभी कंगाल न हो, कभी किसीके गर्भ में फिर उलटा न लटके, कभी विकार उसका पीछा न करें, कभी पुण्य और पाप की चोटें वह न सहे ।

न मौज उड़ाना अच्छा है, न चोटें खाना अच्छा है ।
अगर हो अक्ल ऊँची, तो रब को पाना अच्छा है ।।

शिष्य मौज-मजा उड़ाने के लिए यज्ञ कर रहा था । गुरु ने कहा : ''जो तेरा है सो मेरा हो जाय ।''

यहाँ राजा को अपने गुरु-शिष्य के संबंध का ज्ञान नहीं है । एक तेजस्वी ब्राह्मण है इस नाते बृहदश्व ने सब दे डाला । फिर वामदेव ने कहा : ''देखो, दान तो दे दिया, अब दक्षिणा लाओ ।''

राजा ने अपने पुत्र की ओर देखा तो वामदेव ने कहा : ''बृहदश्व ! जो तेरा है वह मेरा हो गया है ।''

जहाँ-जहाँ उसका मन जाता, गुरु इशारा करते कि जो तेरा है सो मेरा हो गया है । अब राजा विह्वल हो गया । मन उद्विग्न हो गया और उसने एक झोंका खाया । स्वप्न कहो, गुरु का संकल्प कहो या ईश्वर की माया कहो लेकिन उसने देखा कि मैं मर गया हूँ । मरकर यमपुरी गया हूँ और मेरा हिसाब देखा जा रहा है ।

यमदूतों ने उससे कहा : ''तुमने सौ यज्ञ पूरे नहीं किये, ९९ ही यज्ञ हुए हैं । इसलिए इंद्र बनने का अधिकार तुमको अभी प्राप्त नहीं होगा, उपेन्द्र (इन्द्र के छोटे भाई) बनने का अधिकार प्राप्त होगा । कर्ता होकर जो सत्कर्म किये उनका फल सुख भी मिलेगा और उन कर्मों में जो गलतियाँ हुईं – तुमने इतने यज्ञ किये तो प्रजा का जो कर (टैक्स) आदि लेकर खून चूसा, यज्ञ में 'स्वाहा... स्वाहा...' करने पर जो जीव-जंतु मरे – उनका फल दुःख भी मिलेगा । तो बताओ, पहले उपेन्द्र पद का सुख लेना है या जो पापकर्म हुए हैं उनकी सजा भोगनी है ?''

बृहदश्व ने कहा : ''पहले दुःख भोगकर फिर सुख भोगना ठीक होगा ।''

उसी क्षण वह मरुभूमि में गिराया गया । मरुभूमि के बालू में तपने लगा । धूप इतना नहीं तपाती जितना धूप से तपा हुआ बालू तपाता है । राजा पीड़ा से मूर्च्छित हो गया । मूर्च्छा से उठने पर विचार आया कि 'मुझे यमदूतों ने यहाँ क्यों फेंका ? जो मेरा था वह तो मैंने बटुक ब्राह्मण को दे दिया । जब सब दे दिया तो पाप-पुण्य भी दे दिया, फिर पाप का फल मेरा कैसे रहा ?'

बृहदश्व बोला : ''यमराज ! यह कैसा अन्याय है ! मैंने तो सब दे डाला था फिर मुझे मरुभूमि में क्यों भेजा गया ?''

यह कहते हुए वह देखता है कि वामदेवजी

उसके सम्मुख मुस्करा रहे हैं । वामदेवजी ने संकल्प किया तो बृहदश्व को उनमें अपने गुरुदेव का दीदार होने लगा ।

बृहदश्व बोला : ''गुरुजी आप ! भूल हो गयी ।''

वामदेवजी बोले : ''बेटा ! तूने 'जो कुछ मेरा हो, वह सब आपका हो जाय' ऐसा कह तो दिया, फिर भी तुझे सत्कर्म का फल भोगने की जो वासना थी उसके कारण मरुभूमि में गिराया गया । इस वासना को छोड़ दे । इंद्र होने की वासना करता है तो मरुभूमि में भी जाना पड़ेगा और माँ के गर्भ में भी जाना पड़ेगा । तू इंद्र होने की इच्छा न कर, देवता होने की इच्छा न कर, यक्ष और गंधर्व होने की इच्छा न कर । तू तो 'जो कुछ मेरा है सो आपका हो जाय...' कर दे । तब तेरा पुण्य तेरा नहीं रहेगा, तेरा पाप तेरा नहीं रहेगा । जब पुण्य और पाप तेरा नहीं तब जीवभाव भी तेरा नहीं । जब जीवभाव तेरा नहीं तो जो मैं हूँ सो तू हो जायेगा और जो तू है सो मैं हो जाऊँगा ।''

बृहदश्व को उसके गुरु ने इंद्रासन के लालच से बचाकर इच्छापूर्ति की परेशानी से हटाके इच्छा-निवृत्ति का उपदेश दिया और उस सत्पात्र शिष्य ने **'यद्गत्वा न निवर्तन्ते तद्धाम परमं मम ।'**– उस परम सत्ता के धाम में समाके, जिसे पाकर फिर संसार में वापस न लौटना पड़े ऐसे आत्मज्ञान को पा लिया ।

अगर आप वह परम पद चाहते हो तो मूलबंध करके जीभ तालू में लगाओ । श्वास अंदर जाता है तो **'सो'**, बाहर आता है तो **'हम्'... सोऽहम्... सर्वोऽहम्... आकाशस्वरूपोऽहम्... चिदाकाशोऽहम्...** इस अत्यंत ऊँची, सूक्ष्मतम साधना से निःसंकल्प अवस्था में पहुँच जाओ, ब्राह्मी स्थिति में आ जाओ । ○

मैं आपका विकास चाहता हूँ

– पूज्य बापूजी

मुझे आपकी चीज नहीं चाहिए, आपकी वस्तु नहीं चाहिए, आपका प्रणाम तक नहीं चाहिए, आपका फूलहार भी आपको पहनाता हूँ तो मुझे आनंद आता है । मुझे आपसे क्या लेना है ? मुझे तो आपका विकास चाहिए बस । इस विनाश के युग में विकास चाहिए । इस युग में धन बढ़ गया, बम बढ़ गये, ऐश-आराम बढ़ गये, फास्टफूड बढ़ गया, बेशर्माई की फिल्में बढ़ गयीं, डिस्को डांस बढ़ गया... इसलिए हमें आपका विकास चाहिए ।

अमूल्य मानव-जन्म का एक-एक पल बीता जा रहा है । जितनी आयु लेकर आये हैं उसमें से एक-एक साँस कम होती जा रही है । न जाने कब, कहाँ, कैसे साँसों की संख्या पूरी हो जाय और अनाथ होकर, निराश होकर हारे हुए जुआरी की तरह संसार से विदा होना पड़े !

आपकी आँखें देखना बंद कर दें उससे पहले जिससे देखा जाता है, कान सुनना बंद कर दें उससे पहले जिससे सुना जाता है, दिल की धड़कनें बंद हो जायें उससे पहले जिसकी सत्ता से दिल धड़कता है उस दिलबर दाता का ज्ञान-ध्यान और शांति का प्रसाद आप लोगों तक पहुँचा सकूँ; भगवान व्यासजी की प्रसादी से, अपने गुरुदेव की प्रसादी से, गीता के, उपनिषदों के ज्ञान से आपका जीवन महका सकूँ जिससे जीते-जी आप मौत के सिर पर पैर रखकर परम शांति और आनंद पा सकें और आत्मा-परमात्मा का साक्षात्कार कर सकें । आपका तन तंदुरुस्त रहे, मन प्रसन्न रहे, बुद्धि में बुद्धिदाता का प्रकाश हो, उसकी प्रेरणा हो, बस यही चाहता हूँ ।

संसार से तरने का उपाय

परम तत्त्व के रहस्य को जानने की इच्छा से ब्रह्माजी ने देवताओं के सहस्र वर्षों (देवताओं का एक वर्ष = ३६५ मानुषी वर्ष) तक तपस्या की । उनकी उग्र तपस्या से प्रसन्न होकर भगवान महाविष्णु प्रकट हुए । ब्रह्माजी ने उनसे कहा : भगवन् ! मुझे परम तत्त्व का रहस्य बतलाइये ।

परमतत्त्वज्ञ भगवान महाविष्णु 'साधो-साधो' कहकर प्रशंसा करते हुए अत्यंत प्रसन्न होकर ब्रह्माजी से बोले : अथर्ववेद की देवदर्शी नामक शाखा में 'परमतत्त्वरहस्य' नामक अथर्ववेदीय महानारायणोपनिषद् में प्राचीन काल से गुरु-शिष्य संवाद अत्यंत सुप्रसिद्ध होने से सर्वज्ञात है । जिसको सुनने से सभी बंधन समूल नष्ट हो जाते हैं, जिसके ज्ञान से सभी रहस्य ज्ञात हो जाते हैं।

एक सत्शिष्य ने अपने ब्रह्मनिष्ठ गुरु की प्रदक्षिणा की, उन्हें साष्टांग प्रणाम किया और विनयपूर्वक पूछा : ''भगवन् ! गुरुदेव ! संसार से पार होने का उपाय क्या है ?''

गुरु बोले : ''अनेक जन्मों के किये हुए अत्यंत श्रेष्ठ पुण्यों के फलोदय से सम्पूर्ण वेद-शास्त्र के सिद्धांतों का रहस्यरूप सत्पुरुषों का संग प्राप्त होता है । उस सत्संग से विधि तथा निषेध का ज्ञान होता है । तब सदाचार में प्रवृत्ति होती है । सदाचार से सम्पूर्ण पापों का नाश हो जाता है । पापनाश से अंतःकरण अत्यंत निर्मल हो जाता है ।

तब अंतःकरण सद्गुरु का कटाक्ष चाहता है । सद्गुरु के कृपा-कटाक्ष के लेश से ही सब सिद्धियाँ प्राप्त हो जाती हैं, सब बंधन पूर्णतः नष्ट हो जाते हैं और श्रेय के सभी विघ्न विनष्ट हो जाते हैं । सभी श्रेय (कल्याणकारी गुण) स्वतः आ जाते हैं । जैसे जन्मांध को रूप का ज्ञान नहीं होता, उसी प्रकार गुरु के उपदेश बिना करोड़ों कल्पों में भी तत्त्वज्ञान नहीं होता । सद्गुरु के कृपा-कटाक्ष के लेश से अविलम्ब ही तत्त्वज्ञान हो जाता है ।

जब सद्गुरु का कृपा-कटाक्ष होता है तब भगवान की कथा सुनने एवं ध्यानादि करने में श्रद्धा उत्पन्न होती है । उससे हृदय में स्थित दुर्वासना की अनादि ग्रंथि का विनाश हो जाता है । तब हृदय में स्थित सम्पूर्ण कामनाएँ विनष्ट हो जाती हैं । हृदयकमल की कर्णिका में परमात्मा आविर्भूत होते हैं । इससे भगवान विष्णु में अत्यंत दृढ़ भक्ति उत्पन्न होती है । तब विषयों के प्रति वैराग्य उदय होता है । वैराग्य से बुद्धि में विज्ञान (तत्त्वज्ञान) का प्राकट्य होता है । अभ्यास के द्वारा वह ज्ञान क्रमशः परिपक्व होता है ।

परिपक्व विज्ञान से पुरुष जीवन्मुक्त हो जाता है । सभी शुभ एवं अशुभ कर्म वासनाओं के साथ नष्ट हो जाते हैं । तब अत्यंत दृढ़, शुद्ध, सात्त्विक वासना द्वारा अतिशय भक्ति होती है । अतिशय भक्ति से सर्वमय नारायण सभी अवस्थाओं में प्रकाशित होते हैं । समस्त संसार नारायणमय प्रतीत होता है । नारायण से भिन्न कुछ नहीं है, इस बुद्धि से उपासक सर्वत्र विहार करता है ।

इस प्रकार निरंतर (सहज) समाधि की परम्परा से सब कहीं, सभी अवस्थाओं में जगदीश्वर का रूप ही प्रतीत होता है ।'' ○

अद्वैत अभिमान

(पूज्य बापूजी के सत्संग-प्रवचन से)

संजय जब धृतराष्ट्र को कह रहे थे कि 'युद्ध में यह हुआ, वह हुआ...', तब धृतराष्ट्र पूछते हैं कि ''संजय ! बताओ, विजय किसकी होगी ?''

संजय टालता-टालता फिर एक जगह पर बोलता है कि

यत्र योगेश्वरः कृष्णो यत्र पार्थो धनुर्धरः ।
तत्र श्रीर्विजयो भूतिर्ध्रुवा नीतिर्मतिर्मम ।।

'हे राजन् ! जहाँ योगेश्वर भगवान श्रीकृष्ण हैं और जहाँ गाण्डीव-धनुषधारी अर्जुन हैं, वहीं पर श्री, विजय, विभूति और अचल नीति है - ऐसा मेरा मत है ।' **(गीता : १८.७८)**

धृतराष्ट्र बोलते हैं : ''यह क्या बोलता है !''

''महाराज ! अगर यह बात झूठी हो तो आप मुझे भगवान वेदव्यासजी का शिष्य मत समझना ।''

सत्‌शिष्य अपने आत्मारामी गुरु को पाकर गौरव का अनुभव करता है और सत्‌शिष्यों को पाकर सद्‌गुरु का दिल भी गौरव का अनुभव करता है । इस गौरव में अभिमान तो है लेकिन देह-अभिमान नहीं आत्म-अभिमान है । संसारी लोग जिसको आत्म-अभिमान बोलते हैं, वह सूक्ष्म शरीर का आत्म-अभिमान है लेकिन सद्‌गुरु और सत्‌शिष्यों के बीच ब्रह्म-आत्म अभिमान होता है ।

तीन प्रकार के अभिमान होते हैं । 'मैं देह हूँ, इतना लम्बा-चौड़ा हूँ...'- यह देह-अभिमान है । 'मैं भगत हूँ, साधु हूँ, योगी हूँ, साधक हूँ...'- यह सूक्ष्म अभिमान है । लेकिन 'मैं तू हूँ और तू मैं है, वह मैं हूँ और यह मैं है'- इस प्रकार का जो अद्वैत का, ज्ञान का अभिमान है, वह बेड़ा पार करनेवाला है, तारणहार अभिमान है । मेरे सद्‌गुरु श्री श्री लीलाशाहजी भगवान ने एक बार मेरे चित्त की दशा को देखते हुए बड़ी उदार चेष्टा की, वह अब भी मुझे याद आती है ।

प्रभात के करीब चार से पाँच के बीच का समय था, सत्संग चल रहा था और उनके चरणों में हम दो-तीन साधक बैठे थे । उनकी कृपा के बाद भी मेरे चित्त में कभी-कभी थोड़ा संदेह होता था । गुरुदेव ने कृपादृष्टि करते हुए एक प्रसंग उपस्थित कर दिया । सत्संग में बोलने लगे कि ''कई लोगों को, कई बेचारे साधकों को पूर्व के अभ्यास से, अभी के कुछ पुरुषार्थ से, भगवान और गुरु की कृपा से अनुभव तो होता है लेकिन अनुभव में टिकने से पहले ही अनुभव को छोड़कर नीचे आ जाते हैं कि 'मेरे गुरुदेव साँईं लीलाशाहजी जैसा मेरे में सामर्थ्य कहाँ है ? मेरे गुरुदेव को बहुत लोग सुनते हैं, मानते हैं, मेरे को तो कोई पूछता नहीं...' तो इस प्रकार का जो संशय है, पूछना-न पूछना और सामर्थ्य-असामर्थ्य का, वह चित्त की दशा है । उससे पार का अनुभव करनेवाले साधक भी वहाँ टिकते नहीं बल्कि व्यवहार का तराजू लेकर तौल-तौलके बनियागिरी में ही रह जाते हैं ।'' और फिर मेरी तरफ निगाह डाली तो मैं सिर नीचे करता हुआ अहोभाव से भरकर श्रीचरणों की ओर, श्रीमुख की ओर निहार रहा था तो श्रीमुख ने एक कृपा-कटाक्ष और बरसाया ।

''भाई ! ऐसे आदमी अगर मान लें लीलाशाह की बात तो ठीक है, नहीं तो सुनो...''- ऐसे करके फिर नजर डाली ।

''आसाराम ! यह गीता और यह उपनिषद् है, इनको मैं सिर पर रखकर कसम खाता हूँ कि जो लीलाशाह है, वह आसाराम तू है । जो मैं हूँ

= = = = = = = = = शेष पृष्ठ २३ पर

भोजन और भजन

भोजन और भजन दोनों ही हमारे लिए आवश्यक हैं । जैसे भोजन के बिना हम जी नहीं सकते, वैसे ही भजन के बिना हमारा जीना नहीं जीने के बराबर है । जैसे भोजन हमारे बाह्य शरीर का पोषक है, वैसे ही भजन हमारे आंतरिक शरीर का पोषक है । अपने शरीर के सर्वांगीण विकास के लिए दोनों की आवश्यकता को हृदयंगम करना चाहिए । जैसे भोजन के बिना हमारा भजन ठीक से नहीं हो सकता इसका अनुभव सभीको है, वैसे ही यदि सभी यह व्रत ले लें कि 'बिना भजन किये हम भोजन नहीं करेंगे ।' तो हम सभीका संबंध भगवान से होने में देर नहीं लगेगी ।

भगवान श्रीकृष्ण कहते हैं :

युक्ताहारविहारस्य युक्तचेष्टस्य कर्मसु ।
युक्तस्वप्नावबोधस्य योगो भवति दुःखहा ।।

'दुःखों का नाश करनेवाला योग तो यथायोग्य आहार-विहार करनेवाले का, कर्मों में यथायोग्य चेष्टा करनेवाले का और यथायोग्य सोने तथा जागनेवाले का ही सिद्ध होता है ।' **(गीता : ६.१७)**

भोजन के असंयम से ही शरीर में रोग का प्रवेश होता है, जो भजन में बाधा उपस्थित करता है ।

भूखे भजन न होइ गोपाला ।
ये लो अपनी कंठी ये लो माला ।।

भोजन को ही प्रधानता देने और भजन को भूल जाने के कारण ही आज देश के विभिन्न भागों में अकाल जैसी स्थिति हो गयी है । भजन का बल महान होता है । भजन और भोजन का पारस्परिक संबंध जीवन में स्थापित करना चाहिए । जिन भक्तों ने अपने जीवन में भजन को प्रधानता दी, उन्हें कभी भोजन-संकट नहीं हुआ । यह भजन की ही प्रधानता का प्रभाव है ।

स्वामी रामसुखदासजी महाराज ने कहा है कि 'भगवन्नाम के जप से, कीर्तन से प्रारब्ध बदल जाता है, नया प्रारब्ध बन जाता है; जो वस्तु न मिलनेवाली हो वह मिल जाती है; जो असंभव है वह संभव हो जाता है - ऐसा संतों का, महापुरुषों का अनुभव है । जिसने कर्मों के फल का विधान किया है उसको कोई पुकारे, बार-बार उसका नाम ले तो नाम लेनेवाले का प्रारब्ध बदलने में आश्चर्य ही क्या है ! ये जो भीख माँगते फिरते हैं, जिनको पेट भर खाने को भी नहीं मिलता, वे अगर सच्चे हृदय से नाम-जप में लग जायें तो उनको किसी चीज की कमी नहीं रहेगी । परंतु नाम-जप को प्रारब्ध बदलने में, पापों को काटने में नहीं लगाना चाहिए । जैसे अमूल्य रत्न के बदले में कोयला खरीदना बुद्धिमानी नहीं है, ऐसे ही अमूल्य भगवन्नाम को तुच्छ कामनापूर्ति में लगाना बुद्धिमानी नहीं है ।'

पूज्य बापूजी भी कहते हैं कि 'नियमित त्रिकाल संध्या करनेवाले को रोजी-रोटी के लिए कभी हाथ नहीं फैलाना पड़ता - ऐसा शास्त्रवचन है ।' ❍

पृष्ठ २२ 'अद्वैत अभिमान' का शेष

वह तू है, जो तू है वह मैं हूँ ।''

यह आत्म-गौरव का अनुभव है । एक ऐसी अवस्था सद्गुरु चाहते हैं कि सत्‌शिष्य को यह अनुभव करा दूँ कि 'जो तू है सो मैं हूँ । जो तू है वह कृष्ण है, जो तू है वह राम है, जो तू है वह शिव है, जो तू है वह अम्बा है, जो तू है वह विश्व है और जो विश्व है सो तू है ।' ऐसा साक्षात्कार कराने का मौका ढूँढ़नेवाले जो महापुरुष हैं, उनको हम 'सद्गुरु' कहते हैं । ❍

गुरु की आवश्यकता क्यों ?

हर मनुष्य के भीतर ज्ञान का भण्डार छुपा है अर्थात् उसमें गुरुत्व विद्यमान है परंतु उसके उद्घाटन के लिए गुरु की आवश्यकता है। किसी भी दिशा में ज्ञान प्राप्त करने के लिए उस विषय के गुरु की जरूरत होती है। मनुष्य को डॉक्टर बनना हो तो डॉक्टर की, वकील बनना हो तो वकील की, विद्वान बनना हो तो विद्वान की और चोर बनना हो तो चोर की शरण जाकर उस विषय का ज्ञान लेना पड़ता है। तो फिर सच्चे सुख का जो अमिट खजाना है, उस सच्चिदानंद परमात्मा का ज्ञान क्या ऐसे ही मिल जायेगा !

सहजो कारज संसार को गुरु बिन होत नाहीं।
हरि तो गुरु बिन क्या मिले समझ ले मन माहीं।।

परमात्मा का साक्षात्कार करने के लिए किसी देहधारी पूर्ण गुरु की आवश्यकता क्यों होती है, इसे समझने के लिए पहले इस बात को भलीभाँति मन में बैठा लेना जरूरी है कि पूर्ण संत या सच्चे सद्गुरु परमात्मा के ही व्यक्त रूप होते हैं। सच्चे गुरु और परमात्मा के बीच कोई अंतर नहीं होता। अहंकार ही मनुष्य और परमात्मा के बीच एकमात्र आवरण है। सच्चे संत इस आवरण को पूर्णतः दूर कर परमात्मा से उसी प्रकार एकाकार हो जाते हैं, जैसे नदी समुद्र में मिलकर एकाकार हो जाती है।

मनुष्य भौतिक सीमाओं के कारण प्रभु के अभौतिक रूप का दर्शन करने में सर्वथा असमर्थ है। परमात्मा तक उसकी पहुँच तभी हो सकती है जब स्वयं परमात्मा मनुष्य का रूप धारण कर मनुष्य से उसके भौतिक स्तर पर आकर मिलें। दयालु परमात्मा मनुष्य के उद्धार के लिए ठीक यही रास्ता अपनाते हैं। वे मानवीय रूप धारण कर संसार में आते हैं और परमात्मा के इसी मानवीय रूप को 'गुरु' नाम दिया गया है अर्थात् गुरु मनुष्यरूप में परमात्मा ही हैं। अपने मानवीय रूप के माध्यम से वे जीवों को जगाते हैं और उन्हें सही मार्ग दिखलाकर दीक्षा व कृपा के सहारे अपने से मिलाते हैं। दीक्षा ही परमात्मप्राप्ति का साधन है।

योजयति परे तत्त्वे स दीक्षयाऽऽचार्यमूर्तिस्थः।

'सर्वानुग्राहक परमेश्वर ही आचार्य-शरीर में स्थित होकर दीक्षा द्वारा जीव को परम शिव-तत्त्व की प्राप्ति कराते हैं।'

हमें ज्ञान-वैराग्यसम्पन्न सद्गुरु मिलने चाहिए। यदि सगुण और निर्गुण भक्ति की परिभाषा करें तो हम कह सकते हैं कि **ज्ञान, वैराग्य, क्षमा, शील, विचार, संतोष आदि सद्गुणसम्पन्न ब्रह्मनिष्ठ संत ही सगुण भगवान हैं।** उनके प्रति आत्मसमर्पण एवं श्रद्धासमर्पण सगुण भक्ति है और सत्त्व, रजस्, तमस् इन तीन गुणों से रहित जो सबका अपना चेतन स्वरूप है, यही निर्गुण भगवान है। अतएव दृश्य-विषयों से लौटकर स्वस्वरूप चेतन में स्थित हो जाना निर्गुण भक्ति है। भारतीय संस्कृति, दर्शन, अध्यात्म, धर्म और साधना-परम्परा में गुरु का अनन्य स्थान है। हिन्दू, जैन, बौद्ध, सिख आदि सभी धर्म-सम्प्रदायों में गुरु-तत्त्व हमेशा शीर्षस्थ रहा है।

कुछ लोग कहते हैं कि मनुष्य की पूजा गलत है। परंतु मनुष्य की पूजा न की जाय तो किसकी की जाय, पत्थर की या शून्य की ? किसी पत्थर की मूर्ति की पूजा की जाती है तो वह भी एक मनुष्य की आकृति है और शून्य-निराकार आदि तो एक धारणा है। यह ठीक है कि मनुष्य में राक्षस और पशु भी हैं परंतु मनुष्य ही में संत, सद्गुरु, देव और भगवान भी हैं।

निराकार निज रूप है प्रेम प्रीति सों सेव।
जो चाहे आकार को साधू परतछ[१] देव।। ❍

१. प्रत्यक्ष

तेषां सततयुक्तानां...

– पूज्य बापूजी

भगवान श्रीकृष्ण कहते हैं :

तेषां सततयुक्तानां भजतां प्रीतिपूर्वकम् ।
ददामि बुद्धियोगं तं येन मामुपयान्ति ते ।।

'उन निरंतर मेरे ध्यान आदि में लगे हुए और प्रेमपूर्वक भजनेवाले भक्तों को मैं वह तत्त्वज्ञानरूप योग देता हूँ, जिससे वे मुझको ही प्राप्त होते हैं ।'

(भगवद्गीता : १०.१०)

सततयुक्तानां... 'सततयुक्त' का अर्थ ऐसा नहीं कि आप सतत माला घुमाते रहो या मंदिर में बैठे रहो । हाँ, माला के समय माला घुमाओ, मंदिर के समय मंदिर में जाओ लेकिन फिर भी इन सबके साक्षी होते-होते, इस जगत के मिथ्यात्व को देखते-देखते जिससे सब हो रहा है उसमें सतत गोता लगाओ । रटनेवाले लोग तो रटन करते-करते रटनस्वरूप हो जाते हैं लेकिन रटन में ही रुकना नहीं है, उससे भी आगे आत्मपद को समझना है, उसमें प्रीति और विश्रांति पानी है ।

एक बार संत तुलसीदासजी जंगल में शौच से निवृत्त होकर किसी कुएँ पर पानी लेने के लिए आये तो उनको उस कुएँ से चौपाइयाँ गाने की आवाज सुनायी पड़ी । गोस्वामी तुलसीदास चकित हो गये कि 'मेरी चौपाइयाँ कुएँ के भीतर कौन गा रहा है ?' तुलसीदासजी ने कहा : ''मनुष्य हो, यक्ष हो, राक्षस हो, गंधर्व हो, किन्नर हो या प्रेत हो, व्यक्त हो या अव्यक्त हो, जो भी हो मुझे अवश्य उत्तर मिले कि चौपाई गानेवाले आप कौन हो ?''

आवाज आयी कि 'हे मुनिशार्दूल ! हे तुलसीदासजी ! हम पाँच मित्र थे । हम राम-राम रटते थे लेकिन राम के सातत्य स्वरूप को नहीं जानते थे । आपकी चौपाइयाँ और दोहे भी आपस में गाते थे । घूमते-घामते इस जंगल में सैर करने आये । हमारा मित्र पानी भरने को इस कुएँ पर आया । पानी भरने का अभ्यास न होने के कारण उसके हाथ से रस्सी छूट गयी । रस्सी छूट गयी तो उसका संतुलन भी बिगड़ गया और वह कुएँ में गिर पड़ा । उस मित्र को बचाने के प्रयास में दूसरा भी गिर पड़ा, तीसरा भी गिर पड़ा । चौथा गिरा तो पाँचवाँ 'कौन-सा मुँह दिखाऊँगा' यह सोचकर जानबूझकर कूद पड़ा । हम अवगत होकर मरे हैं । हमें अब गर्भ नहीं मिल रहा है लेकिन पुराना चौपाइयों के रटन का सातत्य है, इसलिए हम रट रहे हैं । सातत्य के आधार को हमने नहीं जाना तुलसीदासजी ! अब हम पर कृपा हो जाय ।'

'सततयुक्त' का अर्थ यह नहीं कि सतत कोई धुन लेकर चले । सतत कोई फोटो गले में बाँधकर चले तो भी सततयुक्त नहीं होता है क्योंकि जिस देह को फोटो बाँधा है वह देह छूट जायेगी । जिन आँखों से फोटो देखते हैं वे आँखें भी एक दिन राख में बदलकर मिट्टी में मिल जायेंगी। जिसकी सत्ता से तुम 'मैं' कह रहे हो, जिसकी सत्ता से तुम्हारा मन और बुद्धि स्फुरित हो रहे हैं और मन-बुद्धि इन्द्रियों में आकर जगत का व्यवहार करते हैं उस सत्ता के अस्तित्व का तुम्हें अनुभव हो जाय, ऐसे विचार यदि तुम्हारे चित्त में घूमते रहें तो तुम सतत उसका अनुभव कर सकते हो । सतत का अर्थ है कि तुम अनन्यभाव से ब्रह्म में रहो । ❍

ऐसी हो गुरु में निष्ठा

सभी शिष्यों को अपने गुरु के प्रति प्रेम तो होता ही है पर गुरुभक्त की गुरुभक्ति इतनी उच्च अवस्था में पहुँच जाय कि गुरु जो कहें वही उसके लिए प्रमाण हो जाय तो फिर उसको अपने गुरु में एक भी दोष दिखायी नहीं देगा । पांडुरोगवाले मनुष्य को सब कुछ पीला-ही-पीला दिखायी देता है, वैसे ही उस शिष्य को सब तरफ ईश्वर ही सब कुछ हो गया है - ऐसा दिखने लगता है ।

एक दिन श्री रामकृष्ण परमहंस अपने एक सरल परंतु वादप्रिय स्वभाववाले शिष्य को कोई बात समझा रहे थे पर वह बात उसकी बुद्धि को जँच ही नहीं रही थी । परमहंसजी के तीन-चार बार समझाने पर भी जब उसका तर्क बंद नहीं हुआ, तब कुछ क्रुद्ध-से होकर परंतु मीठे शब्दों में वे उससे बोले : ''तू कैसा मनुष्य है रे ? मैं स्वयं कहता जा रहा हूँ तो भी तुझे निश्चय नहीं होता ?''

तब तो उस शिष्य का गुरु-प्रेम जागृत हो गया और वह कुछ लज्जित होकर बोला : ''महाराज ! भूल हुई, स्वयं आप ही कह रहे थे और मैं नहीं मान रहा था । इतनी देर तक मैं अपनी विचारशक्ति के बल पर व्यर्थ वाद कर रहा था । क्षमा करें ।''

उसकी बात सुनकर हँसते-हँसते रामकृष्ण बोले : ''गुरुभक्ति कैसी होनी चाहिए बताऊँ ? गुरु जैसा कहें वैसा ही शिष्य को तुरंत दिखने लग जाय ।

एक दिन अर्जुन के साथ श्रीकृष्ण घूमने जा रहे थे । श्रीकृष्ण एकदम आकाश की ओर देखकर बोले : 'अर्जुन ! वह देखो, कैसा सुंदर कबूतर उड़ता जा रहा है !' आकाश की ओर देखकर अर्जुन तुरंत बोला : 'हाँ महाराज ! कैसा सुंदर कबूतर है !' परंतु पुनः श्रीकृष्ण ऊपर की ओर देखकर बोले : 'नहीं-नहीं अर्जुन ! यह तो कबूतर नहीं है ।' अर्जुन भी पुनः उधर देखकर बोला : 'हाँ, सचमुच प्रभो ! यह तो कबूतर मालूम नहीं पड़ता ।'

अब तू इतना ध्यान में रख कि अर्जुन बड़ा सत्यनिष्ठ था । व्यर्थ में श्रीकृष्ण की चापलूसी करने के लिए उसने ऐसा नहीं कहा परंतु श्रीकृष्ण के प्रति उसकी इतनी श्रद्धा और भक्ति थी कि श्रीकृष्ण ने जैसा कहा बिल्कुल वैसा ही अर्जुन को दिखने लगा ।''

यह ईश्वरीय शक्ति सभी मनुष्यों के पास कम या अधिक प्रमाण में होती है । इसलिए गुरुभक्तिपरायण साधक अंत में ऐसी अवस्था में पहुँच जाता है कि उस समय यह शक्ति स्वयं उसमें ही प्रकट होकर उसके मन की सभी शंकाओं का समाधान कर देती है और अत्यंत गूढ़ आध्यात्मिक तत्त्वों को उसे समझा देती है । तब उसे अपने संशयों को दूर करने के लिए किसी दूसरी जगह जाना नहीं पड़ता ।

हनुमानप्रसाद पोद्दारजी ने एक व्यक्ति से बातचीत करते हुए कहा : ''कोई सत्पात्र हो तो हम संकल्प करके उसको अभी-अभी भगवान के दर्शन करा दें ।''

उसने पूछा : ''महाराज ! कैसे ? सत्पात्र की पहचान क्या है ?''

''अत्यंत श्रद्धा हो और संयमी जीवन हो ।''

''अत्यंत श्रद्धा का क्या अर्थ ?''

''मैं उसको बकरी दिखाऊँ और बोलूँ कि यह गाय है तो उसको गाय दिखनी चाहिए, ऐसी श्रद्धा हो । हृदयपूर्वक मानने लग जाय, हमारे भाव के साथ उसका भाव उसी समय एक हो जाय, हमारे चित्त के साथ उसका चित्त एकाकार हो जाय तो फिर हमारा अनुभव उसका अनुभव हो जायेगा ।'' ❍

सोमवती अमावस्या व अमृतसिद्धियोग

(२२ जून २००९)

अमावस्या के दिन सोमवार का योग होने पर देवदुर्लभ पुण्यकाल होता है क्योंकि गंगा, पुष्कर एवं दिव्य अंतरिक्ष और भूमि के जो सब तीर्थ हैं वे 'सोमवती (दर्श) अमावस्या' के दिन जप, ध्यान, पूजन करने पर विशेष धर्मलाभ प्रदान करते हैं । यह तिथि सूर्यग्रहण के बराबर कही गयी है । इस दिन किया गया स्नान, दान व श्राद्ध अक्षय होता है तथा मौन रहकर स्नान करने से हजार गौ-दान का फल मिलता है । इस दिन पीपल और भगवान विष्णु का पूजन तथा उनकी १०८ प्रदक्षिणा करने का विधान है । प्रदक्षिणा से पूर्व यह प्रार्थना की जाती है :

मूलतो ब्रह्मरूपाय मध्यतो विष्णुरूपिणे ।
अग्रतः शिवरूपाय वृक्षराजाय ते नमः ॥
यं दृष्ट्वा मुच्यते रोगैः स्पृष्ट्वा पापैः प्रमुच्यते ।
यदाश्रयाच्चिरंजीवी तमश्वत्थं नमाम्यहम् ॥

'हे वृक्षराज ! आप जड़ से ब्रह्मास्वरूप, मध्य से विष्णुस्वरूप और मस्तक से शिवस्वरूप हो । आपको मेरा नमस्कार है । (आप मेरे द्वारा की हुई पूजा को स्वीकार करें और मेरे पापों का हरण करें ।) जिन्हें देखने से रोग नष्ट होते हैं व स्पर्शमात्र से पाप तथा जिनके आश्रय में आ जानेमात्र से व्यक्ति चिरंजीवी हो जाता है, ऐसे पीपल को मेरा नमस्कार है ।'

१०८ में से ८ प्रदक्षिणा कच्चा सूत पीपल के वृक्ष को लपेटते हुए की जाती हैं । प्रदक्षिणा करते समय १०८ फल पृथक् रखे जाते हैं । बाद में वे ब्राह्मणों या ब्राह्मणियों में वितरित कर दिये जाते हैं । ऐसा करने से संतान दीर्घायु होती है ।

विशेष : यदि सोमवार को मृग नक्षत्र आता है तो वह 'अमृतसिद्धियोग' कहलाता है । इस बार सोमवती अमावस्या के साथ इस पुण्यमय योग का सुमेल हो रहा है । २२ जून को सूर्योदय से रात्रि ११.४५ बजे तक अमृतसिद्धियोग है ।

गुरुपुष्यामृत योग

(२५ जून को सूर्योदय से दोपहर ३.२९ तक)

'शिव पुराण' में पुष्य नक्षत्र को भगवान शिव की विभूति बताया गया है । पुष्य नक्षत्र के प्रभाव से अनिष्ट-से-अनिष्टकर दोष भी समाप्तप्राय और निष्फल-से हो जाते हैं, वे हमारे लिए पुष्य नक्षत्र के पूरक बनकर अनुकूल फलदायी हो जाते हैं । **'सर्वसिद्धिकरः पुष्यः ।'** इस शास्त्रवचन के अनुसार पुष्य नक्षत्र सर्वसिद्धिकर है । पुष्य नक्षत्र में किये गये श्राद्ध से पितरों को अक्षय तृप्ति होती है तथा कर्ता को धन, पुत्रादि की प्राप्ति होती है ।

देवगुरु बृहस्पति ग्रह का उद्भव पुष्य नक्षत्र से हुआ था, अतः पुष्य व बृहस्पति का अभिन्न संबंध है । पुष्टिप्रदायक पुष्य नक्षत्र का वारों में श्रेष्ठ बृहस्पतिवार (गुरुवार) से योग होने पर वह अति दुर्लभ 'गुरुपुष्यामृत योग' कहलाता है ।

गुरौ पुष्यसमायोगे सिद्धयोगः प्रकीर्तितः ।

शुभ, मांगलिक कर्मों के सम्पादनार्थ गुरु-पुष्यामृत योग वरदान सिद्ध होता है ।

इस योग में किया गया जप, ध्यान, दान, पुण्य महाफलदायी होता है परंतु पुष्य में विवाह व उससे संबंधित सभी मांगलिक कार्य वर्जित हैं ।

विद्या-लाभ के लिए मंत्र

'ॐ ऐं ह्रीं श्रीं क्लीं वाग्वादिनि सरस्वति मम जिह्वाग्रे वद वद ॐ ऐं ह्रीं श्रीं क्लीं नमः स्वाहा ।'

इस मंत्र को आषाढ़ मास में जब उत्तराषाढ़ा नक्षत्र हो तब अर्थात् ८ जुलाई २००९ को दिन भर में कभी भी १०८ बार जप लें और रात्रि ११ से १२ बजे के बीच जीभ पर लाल चंदन से **'ह्रीं'** मंत्र लिख दें । जिसकी जीभ पर यह मंत्र इस विधि से लिखा जायेगा, उसे विद्या-लाभ व विद्वत्ता की प्राप्ति होगी । बाल संस्कार केन्द्रों के बच्चे, अन्य विद्यार्थी एवं सभी लोग इसका अवश्य लाभ लें ।

अन्य व्रत, पर्व

* १८ जून दोपहर ३.०५ बजे से १९ जून : योगिनी एकादशी
* २ जुलाई : देवशयनी एकादशी (स्मार्त), चतुर्मास व्रतारंभ
* ३ जुलाई : देवशयनी एकादशी (भागवत)
* ६ जुलाई : पूर्णिमा (१२.२३ से)
* ७ जुलाई : गुरुपूर्णिमा (दोपहर २.५१ तक)
* ८ जुलाई : पूर्णिमांत श्रावण मासारंभ ❍

व्यक्ति जितना शांतात्मा उतना ही महान आत्मा और जितना अशांतात्मा उतना ही तुच्छात्मा होता है । शांतात्मा को दुःख कहाँ ? रोज केवल पाँच मिनट बैठो और यह सोचो कि 'चंचलता मन में है, बीमारी शरीर में है, अशांति है लेकिन उसको देखनेवाला शांतात्मा मैं हूँ... ॐ शांति... ऐसा हो जाय, वैसा हो जाय; नहीं, जो हो रहा है ठीक है । शांतस्वरूप मैं उसको देख रहा हूँ... मैं व्यापक चैतन्य आत्मा हूँ... आनंद... आनंद... ।'

अगर ऐसा रोज करो तो तुम्हारे बहुत सारे दुःख ऐसे झड़ जायेंगे जैसे मिट्टी में से उठकर कपड़े झाड़ देते हैं तो धूल के कण झड़ जाते हैं ।

– पूज्य बापूजी

सूर्य को अर्घ्य-दान की महत्ता

भारतीय संस्कृति कितनी महान है कि जिससे भी लोगों का तन तंदुरुस्त रहे, मन प्रसन्न रहे और बुद्धि में बुद्धिदाता का प्रकाश हो उसको धर्म से जोड़ दिया । सूर्य को अर्घ्य देना भी धर्म का एक अंग माना गया है । आधुनिक विज्ञान के आधार पर भी सिद्ध हो चुका है कि सूर्य जीवनशक्ति का पुंज है इसलिए धनात्मक शक्ति का केन्द्र है ।

जब भगवान सूर्य को जल अर्पण किया जाता है, तब जल की धारा को पार करती हुईं सूर्य की सप्तरंगी किरणें हमारे सिर से पैर तक पड़ती हैं, जो शरीर के सभी भागों को प्रभावित करती हैं । इससे हमें स्वतः ही 'सूर्यकिरणयुक्त जल-चिकित्सा' का लाभ मिलता है और बौद्धिक शक्ति में चमत्कारिक लाभ के साथ नेत्रज्योति, ओज-तेज, निर्णयशक्ति एवं पाचनशक्ति में वृद्धि पायी जाती है व शरीर स्वस्थ रहता है । इस चिकित्सा के प्रभाव से विकृत गैसें शरीर को प्रभावित नहीं करतीं । अर्घ्य-जल को पार करके आनेवाली सूर्यकिरणें शक्ति व सौंदर्य प्रदायक भी हैं । सूर्य-प्रकाश के हरे, बैंगनी और अल्ट्रावायलेट भाग में जीवाणुओं को नष्ट करने की विशेष शक्ति है ।

अर्घ्य देने के बाद नाभि व भ्रूमध्य (भौंहों के बीच) पर सूर्यकिरणों का आवाहन करने से क्रमशः मणिपुर व आज्ञा चक्रों का विकास होता है । इससे बुद्धि कुशाग्र हो जाती है । अतः हम सबको प्रतिदिन सूर्योदय के समय सूर्य को ताँबे के लोटे से अर्घ्य देना चाहिए । अर्घ्य देते समय इस 'सूर्य गायत्री मंत्र' का उच्चारण करना चाहिए :

'ॐ आदित्याय विद्महे भास्कराय धीमहि ।
तन्नो भानुः प्रचोदयात् ।' ❍

शारीरिक शुद्धि

जितना ध्यान हम शरीर की पुष्टि की तरफ देते हैं, उतना ही ध्यान शरीर की शुद्धि की तरफ देना भी आवश्यक है । अवशिष्ट पदार्थों का निष्कासन करनेवाली शोधन प्रणालियों का कार्य कुशलता से नहीं होगा तो पोषण तंत्र का कार्य अपने-आप मंद अथवा बंद हो जायेगा ।

शरीर से निष्कासन का कार्य मुख्यतः चार अवयवों से होता है : आँतें, गुर्दे, फेफड़े व त्वचा ।

हर रोज लगभग २.५ लीटर पानी, २५ ग्राम नत्रजन, २५० ग्राम कार्बन व २ किलो अन्य तत्त्व एक स्वस्थ व्यक्ति के शरीर से इन अवयवों द्वारा निष्कासित किये जाते हैं ।

१. आँतें : आँतों के द्वारा प्रतिदिन अन्न का अपाचित व अनवशोषित भाग, जीवाणु (बैक्टीरिया), कार्बन-डाई-ऑक्साइड, हाइड्रोजन आदि वायु, पानी व अन्य तत्त्व मल के रूप में बाहर निकाले जाते हैं ।

मल के वेग को रोकना, बिना चबाये, शीघ्रता से, अति मात्रा में, असमय, अनुचित आहार का सेवन, शारीरिक परिश्रम व व्यायाम का अभाव, रात्रि-जागरण, सुबह देर तक सोना, सतत व्यग्रता, चिंता व शोक आँतों की कार्यक्षमता को क्षीण करते हैं ।

उपवास (सप्ताह अथवा पंद्रह दिन में एक दिन पूर्णतः निराहार रहना), उषःपान (रात का रखा हुआ छः अंजली जल प्रातः सूर्योदय से पूर्व पीना), चंक्रमण (सुबह-शाम तेज गति से चलना), योगासन, उड्डीयान व मूल बंध तथा सम्यक् आहार आँतों को स्वच्छ व सशक्त करते हैं ।

२. गुर्दे (किडनियाँ) : गुर्दे प्रतिदिन १७० से २०० लीटर रक्त को छानकर डेढ़ से दो लीटर मूत्र की उत्पत्ति करते हैं । मूत्र के द्वारा अतिरिक्त जल, नत्रजन, नमक, यूरिक एसिड आदि निष्कासित किये जाते हैं ।

मूत्र के वेग को बार-बार रोकना, मूत्रवेग को रोककर जलपान, भोजन, संभोग करना, पचने में भारी, अति रुक्ष, उष्ण-तीक्ष्ण पदार्थ व नमक का अधिक सेवन, मांसाहार, नशीले पदार्थ, अंग्रेजी दवाइयाँ तथा शरीर का क्षीण होना गुर्दों व मूत्राशय (यूरिनरी ब्लैडर) की कार्यक्षमता को घटाते हैं ।

पर्याप्त शुद्ध जलपान, उषःपान, सोने से पूर्व, प्रातः उठते ही तथा व्यायाम व भोजन के बाद मूत्रत्याग, कटिपिंडमर्दनासन, पादपश्चिमोत्तानासन गुर्दे व मूत्राशय को स्वस्थ रखते हैं ।

३. फेफड़े : फेफड़ों के द्वारा प्रतिदिन लगभग २५० मि.ली. पानी, २०० ग्राम कार्बन, उष्णता व ५० ग्राम अन्य तत्त्व बाहर फेंक दिये जाते हैं ।

मल-मूत्र, छींक, डकार आदि के वेगों को रोकना, भूख लगने पर व्यायाम करना, शक्ति से अधिक व कठोर परिश्रम करना, रुक्ष-शीत पदार्थों का अति सेवन, प्रदूषित हवा व धातुक्षय से फेफड़ों में विकृति आ जाती है ।

प्राणायाम (नाड़ी-शोधन, भस्त्रिका, उज्जायी, कपालभाति आदि), जहाँ जीवनीशक्ति की अधिकता हो ऐसे पहाड़, जंगल या नदी किनारे खुली हवा में घूमना फेफड़ों को स्वच्छ व सक्रिय बनाता है ।

४. त्वचा : त्वचा के द्वारा पसीने के रूप में प्रतिदिन लगभग ६०० मि.ली. पानी, ५ ग्राम कार्बन, ३-४ ग्राम नत्रजन, नमक, अमोनिया आदि तत्त्व निष्कासित होते हैं ।

विरुद्ध आहार (जैसे दूध के साथ फल, खट्टे

शेष पृष्ठ ३० पर

मंत्रमूलं गुरोर्वाक्यं...

मेरे पुत्र दिव्येश कुमार (उम्र १६ वर्ष) को बचपन से कुछ सुनायी नहीं देता था । कई एलोपैथिक दवाइयाँ कीं परंतु कुछ भी लाभ नहीं हुआ । मुझे कुछ साधकों द्वारा पता चला कि गुरुदेव ने ओंजल आश्रम के बड़ बादशाह पर शक्तिपात करते समय कहा था कि 'इस बड़ बादशाह (कल्पवृक्ष) की जटाओं का रस कान में डालने से बहरापन मिट जायेगा ।'

संतों के प्रति श्रद्धा-भक्ति से युक्त होकर उनके वचनों में दृढ़तापूर्वक विश्वास किया जाय तो प्रकृति भी सेवा करने को राजी हो जाती है, इसका मैंने प्रत्यक्ष अनुभव किया । **'मंत्रमूलं गुरोर्वाक्यं...'** अर्थात् ब्रह्मनिष्ठ सद्गुरुदेव के श्रीमुख से उच्चारित वाक्य मंत्र के समान होते हैं - यह जो शास्त्र-वचन है, वह परम सत्य है, बस आपमें गुरु-वाक्य के प्रति दृढ़ श्रद्धा होनी चाहिए ।

हमने बड़ बादशाह की जटाओं का रस दिव्येश के कानों में डाला । बचपन से कुछ न सुन पानेवाले मेरे बेटे ने जब पहली आवाज सुनी तो वह हर्ष से गद्गद हो गया । हमारे पूरे परिवार का हृदय पूज्य बापूजी के प्रति अहोभाव से भर गया । सबके दुःख हर लेनेवाले निःस्वार्थ हितैषी भगवत्स्वरूप गुरुदेव को मेरे कोटि-कोटि प्रणाम !

- धनजीभाई पटेल
भिनार, जि. नवसारी (गुज.) ।

वटवृक्ष नहीं कल्पवृक्ष कहो !

मेरी तीन साल की बेटी जन्म से ही गूँगी थी । कई जगहों पर उसका इलाज करवाया, भूआ-भोपाओं को भी दिखाया लेकिन कोई फायदा नहीं हुआ । आखिर मैंने पूज्य बापूजी की शरण ली । मेरे परिवार में मेरे अलावा अन्य सभी लोगों को बापूजी से मंत्रदीक्षा पाने का सौभाग्य प्राप्त हुआ है । मैंने पूज्य बापूजी से हृदयपूर्वक प्रार्थना की एवं बड़ बादशाह के आगे मनौती मानी कि 'मेरी बच्ची बोलने लग जाय तो मैं उसे अमदावाद आश्रम दर्शन कराने ले जाऊँगा ।'

मेरी प्रार्थना स्वीकार हुई । ६ माह पूर्व से ही उसने बोलना शुरू किया है । मैं उसे आश्रम में ले गया और अपने साथ परिक्रमा करायी । पूज्य गुरुदेव की असीम कृपा का वर्णन मैं शब्दों में नहीं कर सकता । कलियुग में पूज्य बापूजी अवतारी महापुरुष हैं एवं उनके द्वारा शक्तिपात किये वटवृक्ष साक्षात् कल्पवृक्ष हैं ।

- जितेन्द्र पंड्या, बाँसवाड़ा (राजस्थान) ।

पृष्ठ २९ 'शारीरिक शुद्धि' का शेष

व नमकयुक्त पदार्थों का सेवन), खट्टे, तीखे, तले हुए पदार्थ त्वचा को दूषित करते हैं ।

मालिश, उबटन व सूर्यस्नान से त्वचा निर्मल एवं दृढ़ होती है । अतः प्रातःकाल सौम्य धूप में सिर ढककर सूर्यस्नान अवश्य-अवश्य करना चाहिए । यह रोगनाशक व जीवनदायक है । सूर्यस्नान से सभी शोधन-प्रणालियाँ अपना काम सुचारु रूप से करने लगती हैं । प्रातः तुलसी के ५-७ व नीम के १०-१५ पत्तों का सेवन शरीर को शुद्ध कर रोगप्रतिकारक शक्ति बढ़ाता है । मलिन पदार्थों का शरीर में संचय गंभीर व्याधियों को आमंत्रित करता है तथा इनका पूर्णरूप से शरीर से बाहर निकल जाना ताजगी, स्फूर्ति व निरोगता लाता है ।
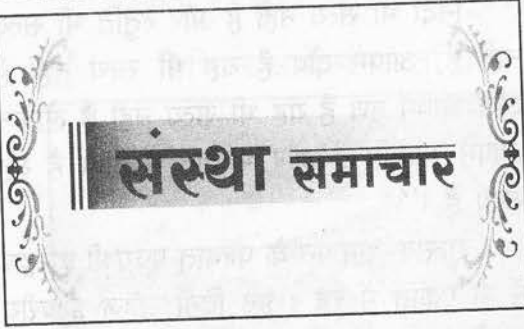
२३ अप्रैल को पूज्य बापूजी का **सोलन (हि.प्र.)** स्थित आश्रम में आगमन हुआ । बापूजी आये तो थे एकांतवास हेतु परंतु जैसे फूलों से मधु बटोरने के लिए मधुमक्खियाँ पहुँच ही जाती हैं, ऐसे ही दुर्गम पहाड़ियों में बसे इस आश्रम में दूर-दराज के गाँवों से सत्संग-प्रेमी पहुँच ही गये । उनकी तपस्या-तितिक्षा देखकर पूज्यश्री ने भी करुणावश दर्शन-सत्संग देकर उन्हें तृप्त किया ।

२६ अप्रैल को शीतल हवामान के लिए प्रसिद्ध **शिमला** में हुए सत्संग-आयोजन में यहाँ की जनता ने अंतःकरण की शीतलता का अद्भुत प्रसाद पाया । धन, सत्ता, विद्या में उलझे हुए मनों की उलझन को सुलझाते हुए पूज्य बापूजी बोले : ''धन, सत्ता आदि का होना बुरा नहीं है लेकिन इनका अभिमान होना बुरा है । धन, सत्ता, लौकिक विद्या की लोलुपता दीन बना देती है । ये आने-जानेवाले हैं और स्वयं सदा रहनेवाला है फिर इनसे दीन होना या अभिमानी होना अज्ञता है ।''

२७ अप्रैल को पूज्य बापूजी का सत्संग-प्रसाद पाकर धनभागी हुआ **बिलासपुर (हि.प्र.)** व आस-पास का इलाका ।

एकांतवास हेतु **नादौन आश्रम** पधारे पूज्य बापूजी को यहाँ के भक्तों ने आखिर रिझा ही लिया और **२८** की शाम रही **नादौन**वासियों के नाम । दूर-दूर से बड़ी संख्या में आये भक्तों से सत्संग-पंडाल तो भरा रहा, मैदान भी महिमावंत हुआ ।

३० अप्रैल व **१ मई** को **हमीरपुर (हि.प्र.)** में बरसा सत्संगामृत । यहाँ की श्रद्धा-भक्ति से भरपूर जनता को भक्ति के साथ सर्वांगीण विकास और आत्मज्ञान का प्रकाश पूज्य बापूजी के सत्संग से मिला । हजारों ने गुरुदीक्षा प्राप्त कर गुरुमुखी साधना का आरंभ किया ।

संयम और सुविचार की महत्ता पर प्रकाश डालते हुए पूज्यश्री ने कहा : ''जिन देशों में संयम नहीं, जिन देशों में सत्संग नहीं, जिन देशों में सुविचार नहीं, जिन देशों में सत्-चित्-आनंद अमर आत्मा का प्रकाश नहीं, वे देश कामी, क्रोधी, लोभी, शोषक व आतंकवादी प्रवृत्ति के लोगों को जन्म देनेवाले हो जाते हैं ।''

पहली बार बापूजी से रू-बरू हो रहे हमीरपुरवासी अंतरात्म-मंदिर में आत्मानुभव, आत्मविश्रांति पाते हुए ध्यान की गहराई में डूबते गये ।

३ मई को **देहरादून (उत्तराखंड)** में पूज्यश्री का सत्संग हुआ । बच्चों के संस्कारों के विषय में बापूजी ने कहा : ''पहली यूनिवर्सिटी माँ है । माँ ने अच्छे संस्कार दिये तो बच्चे अच्छाई की तरफ जाते हैं । जो माताएँ फिल्में देखेंगी, पफ-पाउडर लगाकर, बॉयकट करके क्लबों में नाचेंगी उनकी कोख से गाँधीजी जैसी संतान होना असंभव है । उनसे तो मंकी ब्रांड बच्चे पैदा होंगे । इसलिए महिलाओं को चाहिए कि हलकी फिल्मों से, हलके साहित्य से, हलकी बातों से परहेज करें और सत्संगति एवं भगवान के नाम का आश्रय लेकर अपने जीवन को दिव्य बनायें, जिससे दिव्य आत्माओं को भारत में आने का अवसर मिले । भारत में दिव्य आत्माएँ आना चाहती हैं ।''

८ से १० मई तक **हरिद्वार** में आयोजित सत्संग-महोत्सव एवं पूनम-दर्शन कार्यक्रम में

उमड़ा श्रद्धा का सागर । सत्संग-पंडाल को छोटा करते हुए विशाल जनसमुद्र ऐसे लहरा रहा था मानो हरिद्वार में महाकुंभ हो । देश के कोने-कोने से आये साधकों की लाखों की उपस्थिति, पर अद्‌भुत, गहन शांति का साम्राज्य ! मानो वायु के ठहरने से स्थिर हुआ गंभीर, प्रशांत महासागर हो।

अपना आत्मस्वभाव जगाने की कुंजी देते हुए पूज्यश्री ने कहा : ''शराबी की मर्जी पूर्ण करने से हम शराबी बनते हैं, जुआरी की मर्जी पूर्ण करने से हम जुआरी बनते हैं, भँगेड़ी की मर्जी पूर्ण करने से हम भँगेड़ी बनते हैं, ऐसे ही प्रभु की मर्जी पूर्ण करने से हम प्रभु हो जायेंगे क्योंकि वास्तव में हमारा प्रभुस्वभाव है । निंदा भी सत्य नहीं है और स्तुति भी सत्य नहीं है, आपमें दोष है यह भी सत्य नहीं है और आपमें गुण है यह भी सत्य नहीं है लेकिन आपमें भगवान हैं और भगवान में आप हैं यह सत्य है ।''

सत्संग-समापन के पश्चात् पूज्यश्री हरिद्वार में ही एकांत में रहे । इन दिनों सहज ईश्वरीय मस्ती से छलकते हुए सत्संगामृत का लाभ साधकों को मिला । जिज्ञासुओं को परमार्थ-मार्ग में उड़ान भरने हेतु यह सत्संग वरदानस्वरूप है । यह सत्संग वी.सी.डी. **'क्या करूँ ?'** और एम.पी.३ के रूप में उपलब्ध है । जिज्ञासु साधक इसका अवश्य-अवश्य लाभ लें ।

दिव्य प्रेरणा-प्रकाश ज्ञान प्रतियोगिता-२००९

पहली प्रतियोगिता में ४,४५,३९० विद्यार्थी एवं ५,०६६ विद्यालय 'दिव्य प्रेरणा-प्रकाश' ग्रंथ से लाभान्वित हुए । इस बार भी क्षेत्रीय व राष्ट्रीय स्तर पर प्रतियोगिता का आयोजन किया गया है ।

* क्षेत्रीय स्तर पर कक्षा ५ से ७ हेतु केवल 'बाल संस्कार' पुस्तक पर प्रतियोगिता होगी तथा कक्षा ८ से १२ हेतु 'दिव्य प्रेरणा-प्रकाश' ग्रंथ पर (७० अंक) एवं 'भगवद्‌गीता', 'रामायण' व 'महाभारत' से सरल सामान्य ज्ञान पर (प्रति ग्रंथ १०-१० अंक) प्रतियोगिता होगी ।

* क्षेत्रीय स्तर पर प्रत्येक वर्ग के प्रथम ५-५ विजेताओं को पुरस्कार ।

* क्षेत्रीय स्तर पर कक्षा ८ से १२वीं के ६०% से अधिक अंक पानेवाले सभी विद्यार्थी राष्ट्रीय स्तर की परीक्षा दे सकते हैं ।

* राष्ट्रीय स्तर पर सर्वाधिक अंक लानेवाले प्रथम १३ विजेताओं को पूज्य बापूजी के करकमलों से स्वर्ण पदक, रजत पदक आदि विशेष पुरस्कार ।

* ४१० विद्यार्थियों को कुल ८,६०० 'दिव्य प्रेरणा-प्रकाश' ग्रंथों का पुरस्कार ।

* सर्वाधिक विद्यार्थियों का पंजीकरण करानेवाली तीन समितियों को भी पूज्य बापूजी के करकमलों से पुरस्कार ।

* परीक्षा-आयोजन की अंतिम तारीख ३१ अक्टूबर २००९.

बाल संस्कार केन्द्रों में भी प्रतियोगिता का अलग से आयोजन व पुरस्कार-वितरण

सभी क्षेत्रीय आश्रम, समितियाँ व साधक परिवार मिलकर इस प्रतियोगिता का आयोजन करें और विद्यार्थियों को शीघ्र उन्नत बनाने के दैवी कार्य में सहभागी बनें ।

संपर्क : 'बाल संस्कार विभाग', अखिल भारतीय श्री योग वेदांत सेवा समिति, संत श्री आसारामजी आश्रम, अमदावाद-५. फोन : (०७९) ३९८७७७४९, ६६११५७४९.

'दिव्य प्रेरणा-प्रकाश' से
जगमगा रहे हैं लाखों जीवन !

धर्मो रक्षति कीर्तनात्... कीर्तन से धर्म की रक्षा होती है।

विभिन्न क्षेत्रों में भक्तों द्वारा निकाली गयी संकीर्तन यात्राओं के दृश्य ।

देवास (म.प्र.) पुणे (महा.)

शाहजहाँपुर (उ.प्र.) भरतपुर (राज.)

महेन्द्रगढ़ (हरियाणा) बरगढ़ (उड़ीसा)

संगरूर (पंजाब) कानपुर (उ.प्र.)

आश्रम के विविध सेवाकार्यों की विस्तृत जानकारी हेतु आश्रम की वेबसाइट www.ashram.org देखें ।

जोगी रे हम तो लुट गये तेरे प्यार में...

बड़े भाग्य हैं हम सबके जो ऐसा जोगी पाया ।
आत्मज्ञान को सरल बना बापू ने हमें पिलाया ॥

पूज्य बापूजी ने हरिद्वार के सत्संग में अपनी नूरानी निगाहों से
अमीरस बरसाया और सत्संगी हुए निहाल, मालामाल !!

1 June 2009
RNP. No. GAMC 1132/2009-11
WPP LIC No. CPMG/GJ/41/09-11
RNI No. 48873/91
DL (C)-01/1130/2009-11
WPP LIC No. U (C)-232/2009-11
MH/MR-NW-57/2009-11
MR/TECH/WPP-42/NW/09-11

Posting at PSO Ahmedabad between 25th of preceding month to 10th of current month ✲ Posting at ND PSO on 5th & 6th of E.M. ✲ Posting at MBI Patrika Channel on 9th & 10th of E.M.